...ापक

स... ...नन्तश्री

च... ...राज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

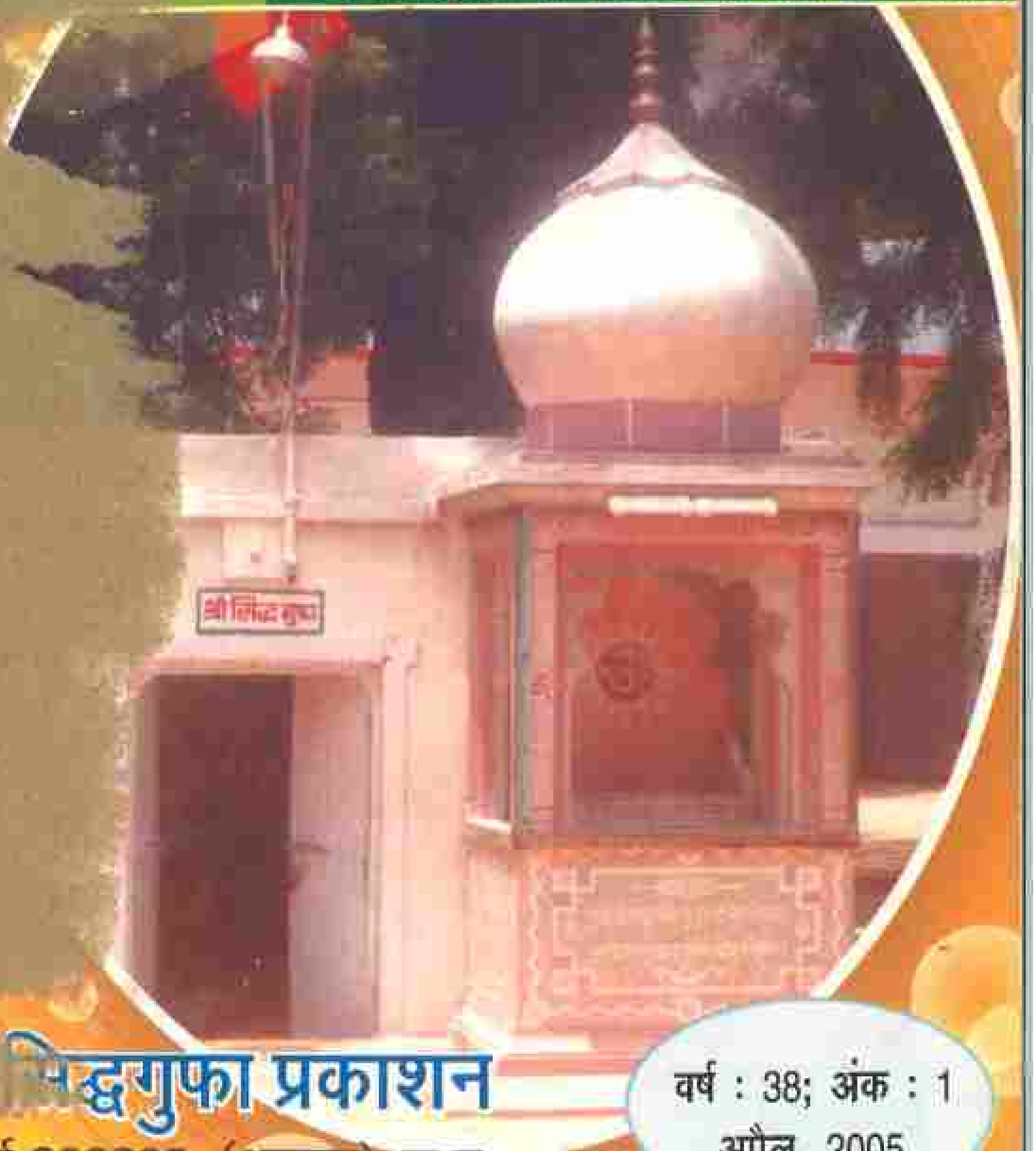

सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : 1

अप्रैल, 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी
संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह
प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- साकार एवं निराकार उपासना (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 7
- हिमालय के अमर महायोगी – पूर्णचन्द्र पन्त 10
- सद्गुरु वचन हिये विच धारो – डा० विजय सिंह 13
- हमारा मन – गुरुदेव का एक प्रिय बालक 16
- गुरुदेव के संस्मरण – जगदीश राय बंसल (गोहाना) 25
- रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी 30
- श्री प्रभुजी का अवतरण – रवीन्द्र स्वामी 34
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति – कु० रुक्मिणी वर्मा 36
- बेजोड़ गुरुभक्त दम्पत्ति – केशव देव उपाध्याय 46
- परमार्थ पथ –रचना शर्मा (मोन्टी) 50
- कविताएँ 54
- छात्र जीवन में योग की उपयोगिता – राजेश कुमार सिंह 55
- चित्त शुद्धि के उपाय – जनक कुलश्रेष्ठ 57
- महाप्रभुजी द्वारा बालिका पर अहैतुकी कृपा – वेदव्रत द्विवेदी 60

एक प्रति	: रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	: रु. 100-00
द्विवार्षिक	: रु. 190-00
आजीवन	: रु. 800-00

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

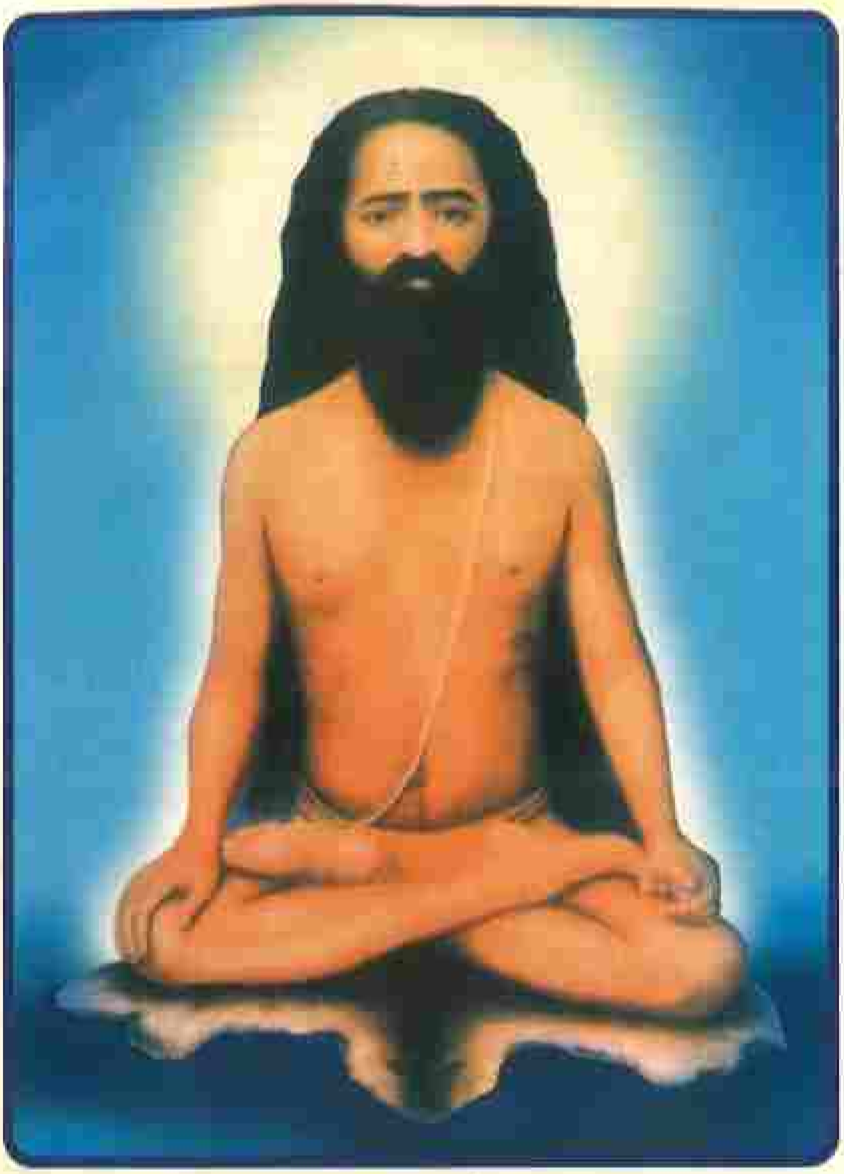

दादा गुरुदेव

योगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38 अंक 1	ध्यायं ध्यायं यदिह् परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम् मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	अप्रैल 2005

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्धयेया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

अर्थात्

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्ता हुए भगवान् विष्णु पालनकर्ता हुए तथा भगवान् शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं—स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

यो यथा कुरुते कर्म शुभं वाप्यशुभं तथा।
तथा फलं भवेत्तस्य नान्यथा तु कदाचन।

—देवी पुराण

जो शुभ अथवा अशुभ जैसा भी कर्म करता है, उसका फल भी वैसा ही होता है, इसके विपरीत कभी भी नहीं होता। कोई भी व्यक्ति प्रारब्ध का उल्लंघन करने में कभी समर्थ नहीं होता।

❊ ❊ ❊

यत्र धर्ममतिः शान्तिस्तत्र श्रीः कान्तिरेव च।
अधर्मो यत्र सा तत्र विपद्रूपा स्वयं शिवा।।

- देवी पुराण

जहाँ धार्मिक बुद्धि है वहीं शान्ति, समृद्धि और कान्ति का वास है; किन्तु जहाँ अधर्म है वहाँ वे शिवा स्वयं विपत्ति के रूप में आ जाती है।

❊ ❊ ❊

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः।।

—चाणक्य नीति दर्पन

इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण, यौवन और जीवन (आयु)—सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अतः सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण ही करना चाहिये। पापाचरण कदापि नहीं।

❊ ❊ ❊

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भारः क्रियां बिना।।

—हितोपदेश

जिनके वश में चित्त और इन्द्रियाँ नहीं है, उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ हैं। बिना आचरण किए ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

❊ ❊ ❊

❑ विशेष लेख

साकार एवं निराकार उपासना

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गीता के बारहवें अध्याय के प्रारम्भ में ही अर्जुन से भगवान ने एक प्रश्न किया था–

'एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
यं चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।'

अर्जुन को एक शंका हुई थी, उसकी निवृत्ति के लिये ही उन्होंने प्रश्न किया और पूछा–कुछ लोग आप के सगुण रूप का चिन्तन, ध्यान एवं उपासना करते हैं और दूसरे कुछ ऐसे हैं जो निराकार अव्यक्त निर्गुण की उपासना करते हैं उनमें आप को कौन से अधिक प्यारे लगते हैं। इनमें से किसका दर्जा ठीक है?

'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।

अर्थात् जो मुझ से निरन्तर मन लगाये मेरी उपासना करते हैं वह मुझे प्यारे हैं। जो जितेन्द्रिय होकर प्राणी मात्र का हित चाहते हुये अव्यक्त की, निराकार की उपासना करते हैं वह भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। किन्तु–**''अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते''** देह धारियों से अव्यक्त की उपासना अत्यन्त कठिन है। इस बात को ध्यान से समझो। जो निर्गुण चेतन का ध्यान करते हैं–क्या ध्यान करेंगे, जो निर्गुण है, आकार–रहित है, मन उसका क्या चिन्तन करेगा? मन ने उसका कोई रूप नहीं देखा, त्वगेन्द्रिय से स्पर्श नहीं किया। मन तो आकृति विशेष का चिन्तन करता है, शब्द या नाद का चिन्तन करता है, रस का चिन्तन करता है। निराकार में तो न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है और न ही गन्ध है। उपनिषद् प्रमाण देते हैं–

'यन्मनुसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।'

जिसका मन से मनन नहीं किया जा सकता, मन जिसकी ताकत से मनन करने वाला होता है वह ही ब्रह्म है। यह नहीं जिसकी तुम उपासना कर रहे हो।

'यच्चक्षुषान पश्यति येन चक्षूंषी पश्यन्ति।
तदेव त्वं ब्रह्म विद्धि नेदम यदिदमुपासते।।'

अर्थात् जिसको आँखों से नहीं देखा जा सकता, जिसकी ताकत से आँखें देखने वाली होती है, वह ही ब्रह्म है, यह नहीं जिसकी तुम उपासना कर रहे हो।

'यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्राणि श्रृण्वन्ति।'

जो कानों से नहीं सुना जा सकता, जिसकी ताकत से कान सुनने वाले होते हैं, वही ब्रह्म है, यह नहीं जिसकी तुम उपासना कर रहे हो। कहने का अभिप्राय यह है जो आँखों से परे, रूप, रस आदि से परे हैं उस अव्यक्त की उपासना कठिन है। किन्तु जो श्रद्धा युक्त होकर मेरा चिन्तन करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। श्री कृष्ण तो नित्य सत्व हैं, परात्पर हैं, वहाँ पर रस, रूप, गन्ध आदि का नामो निशान भी नहीं है। फिर साकार की उपासना वाले युक्ततम क्यों हुये ? इसका एक कारण है कि अव्यक्त की उपासना देह धारियों के लिये अप्राप्य है। कोई व्यक्ति यह सोचे कि **'' ध्यान निर्विषयं मनः''** मन को विषय रहित कर दो, तो ध्यान हो जायेगा। **''न किञ्चिदपि चिन्तयेत''**। किन्तु इस में भी धारणा करनी पड़ेगी कि मुझे कुछ चिन्तन नहीं करना है, वह अपने मन को भुलाने की चेष्टा करेगा। आवश्यकता वही पड़ी अर्थात् कुछ न कुछ करना तो पड़ा ही पड़ा। पड़े–पड़े तो उस अव्यक्त चेतन की ओर भी नहीं जा सकते । किन्तु क्या भगवान् कृष्ण को उन्हें प्रेम करने वाले ही प्यारे लगते हैं? वे अव्यक्त चेतन हैं। सारी दुनियाँ के अन्दर जिस नाम रूप से उसकी कोई उपासना करता है, वह उन्हीं को प्राप्त होता है–

'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्य अचलाम् श्रद्धां तामेव विद्धाम्यहम्।।

जो–जो जिस–जिस शरीर की श्रद्धापूर्वक उपासना करता है भगवान उन–उन में ही उनकी श्रद्धा बढ़ा देते हैं। इस प्रकार से वे एक प्रकार से उन्हीं की ही उपासना करते हैं। योग दर्शन में समाधि प्राप्ति के कई उपाय बतलाये हैं किन्तु उनमें एक खास उपाय बतलाया है–**''वीत राग विषयं वा चित्तम्''**। जो हैं, वे समाधि को प्राप्त हो जाते हैं। देखो! दो साधर्म्य वाली वस्तु ही मिला करती है। पानी में पानी मिल सकता है, दूध में दूध मिल जाता है, आग पानी में नहीं मिल सकती। वैधर्म्य वाली वस्तुयें आपस में नहीं मिलती। इसलिये मन में 'मन' मिल सकता है, बुद्धि में बुद्धि मिल सकती है, अहंकार में अहंकार मिल सकता है। इसलिये भगवान् ने बारहवें अध्याय में अर्जुन से कहा है–

'मय्येव मन आध्यत्स्व, म यि बुद्धिं निवेशय।'

''मे मनसि मन आध्यत्स्व, मयि बुद्धिं निवेशय- मम बुद्यै बुद्धिम् प्रवेशय।'' मेरे मन के अन्दर अपना मन मिला लो, मेरी बुद्धि में अपनी बुद्धि मिला लो। इससे क्या होगा? **निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः**। मन बुद्धि को मेरे मन बुद्धि में मिला लेने पर तू मुझ में ही मिल जायेगा– इसमें कोई शंका की बात नहीं। झगड़ा तो मन बुद्धि का है। ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी'' अथवा **''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः''** के हिसाब से जीव तो ईश्वर का ही अंश है, जैसे कपड़े का यह धागा कपड़े का अंश है। इसका इससे अलग अस्तित्व नहीं है। अंश अंशी का अभेद सम्बन्ध होता है अंशी के अन्दर अंश जा सकता है। भगवान् के नाम रूप के अन्दर आकर्षण है। हमारा मन चाहता है श्री कृष्ण में मिल जायें, कान चाहते हैं श्री कृष्ण की बांसुरी सुन लें। हृदय चाहता है कृष्ण से लिपट जायें।

मैं तुम्हें बता रहा था **''वीत राग विषयं वा चित्तम्''** वीत रागी पुरुषों के मन में मन और बुद्धि

में बुद्धि मिला लेने पर क्या होता है? ऐसा करने से करी कराई कमाई मिलती है। यदि हम योगियाना कोर्स को तय करने लगें तो पहले इन्द्रियों का साक्षात्कार करना पड़ेगा, फिर मन का साक्षात्कार करना पड़ेगा, फिर आत्म दर्शन करें यह तो है साधना का क्रम। किन्तु यदि कोई वीतरागी पुरुषों के मन में मन और बुद्धि में बुद्धि मिला देता है तो ध्यान करने वाले की भी वही स्थिति बनती है, जिसका हम ध्यान कर रहे हैं। देखो! भगवान् शिव यूँ बैठे हैं समाधि में, उनकी बिल्कुल निर्बीज समाधि है। इसी प्रकार से कोई भगवान् कृष्ण का ध्यान करेगा तो उसे भगवान शिव की अथवा भगवान कृष्ण की शक्तियाँ साथ देने लगेगी। उसको सम्प्रज्ञात समाधि में पहले तो यह दीखेगा–

"मैं गणेश हूँ। मैं शिव हूँ अथवा मैं कृष्ण हूँ। "किन्तु समाधि में जब निरन्तर यह देखते चले जाते हैं तो फिर वे यह देखते हैं वहाँ मेरी पूजा हो रही है। वहाँ मुझ पर जल चढ़ाया जा रहा है। वहाँ मेरे भक्त पर आपत्ति आ गई, उसकी रक्षा करनी है, यह सब उसको अनुभव होता है। उसको यह अनुभव नहीं होता कि "मैं शंकर जी का ध्यान कर रहा हूँ' उसको अनुभव होता है, मैं ही शिव हूँ। मैंने एक घटना बताई थी श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय में रहते थे। वहाँ पर भगवान शिव के किसी भक्त को नरामिष भोजी अघोरी ने पकड़ लिया। उस भक्त ने "शिव" " शिव" कह कर भगवान शिव को पुकारा। हमारे दादा गुरु महाप्रभु जी सदा शिव में लय रहते हैं। प्रभु जी भी वैसे ही लय रहते हैं। जब ऐसा "शिव–शिव" पुकारा तो श्री प्रभु जी के कान में आवाज पड़ी। वे लोग क्षण में सुन लेते हैं और तत्काल पहुँच जाते हैं। श्री प्रभु जी ने अघोरी से कहा–छोड़ दे, हमारे बच्चे को! नहीं तो, तुझे अभी खाली करता हूँ। अघोरी ने उनके दिव्य तेज को देखकर उस भक्त को छोड़ दिया। मतलब यह है वे तो गुणातीत हैं, किन्तु यदि कोई लीन रहने वाले योगी का चिन्तन करता है तो उनको उसका आभास अवश्य होता है। इसलिये अखिलात्मा भगवान् ने अव्यक्त के चिन्तन की अपेक्षा अपने नाम रुप का चिन्तन श्रेष्ठ माना। क्योंकि, उनके नाम रुप के अन्दर हमारा बुद्धि और मन जल्दी जा सकता है। संसारी व्यक्तियों का चिन्तन हमारे जन्म–मरण का कारण होता है। किन्तु श्री कृष्ण का चिन्तन, भगवान शिव का चिन्तन, श्री प्रभु जी का चिन्तन, ये चिन्तन ऐसे हैं जो हमें सीधे मुक्तिद्वार तक ले जायेंगे। ये वीतरागी महापुरुष हैं। ये अमनस्क होते हैं। फिर भी अपने चिन्तन करने वालों का उन्हें ज्ञान होता रहता है। एक बार श्री प्रभु जी ऋषिकेश में रह रहे थे मैंने उनसे कहा–प्रभु जी! वृन्दावन में एक भक्त है। श्री कृष्ण में उसका बड़ा प्रेम है। वह सारा दिन एक ही बात रटता रहता है **"ता-ता, मैं वारी जाऊँ, ता ता मैं वारी जाऊँ।"** श्री प्रभु जी ने पूछा कैसे करता है? मैंने फिर बताया। श्री प्रभु जी ने दस बाहर बार इस को सुना फिर प्रभु जी ने कहा–"उसका प्रेम ठीक है। ठीक है भई उसका प्रेम।" फिर मैंने देखा वृन्दावन में उसकी जो मदद हुई वह विलक्षण थी। उसका ता ता मैं वारी जाऊँ तो बन्द हो गया और वह ध्यान में ही बैठा रहता। वीतराग पुरुषों की कथायें सुननी चाहिये। इसलिये हम तुम्हें श्री प्रभु जी की कथायें सुनाते हैं। श्री कृष्ण चन्द्र की कथायें सुनाते हैं। हमारे भारत वर्ष में कथायें कहने का रिवाज है। हम श्री प्रभु जी का चित्र तुम्हारे सामने रखते हैं, वह इसलिये कि श्री प्रभु जी के स्वरूप को देखकर

कौन संस्कारी बच्चा आ जाये और उसके पूर्व संस्कार जागृत हो जाये। हमने भी श्री प्रभु जी के चित्र के प्रथम बार दर्शन किये थे, तो ऐसा लगा कि इनसे मेरा जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध है और ये मेरे पिता हैं। इसके पश्चात् ध्यान में उनके दर्शन तथा पानी पिलाने की आज्ञा आदि–आदि बातों का भी स्मरण हो गया। जानते हो श्री प्रभु जी के स्वरूप में कितनी ताकत है? एक बार मद्रास की रानी पदमावती जो नर सिंह मूर्ति जी की शिष्या थी, काम कोटि शंकराचार्य जी के पास गई। श्री प्रभुजी के चित्र को उनके पास ले गई। कहने लगी–महाराज! यह हमारे सद्‌गुरुदेव का चित्र है। ये कैसे हैं? ये देखकर कहने लगे–**''नारायण स्वयं''** ये स्वयं नारायण हैं। रानी ने पूछा–"महाराज, इनकी शक्ति कितनी है?" उन्होंने कहा–**''इनकी शक्ति का क्या अंदाजा?''** उनके इस तस्वीर में ही हजारों को एक साथ मुक्ति देने की ताकत है। "क्यों आयी यह ताकत"। यह है– **''वीतराग विषयं वा चित्तम्''** का सिद्धान्त। वीतरागियों के मन में मन बुद्धि में बुद्धि लय करने पर समाधि हो जाती है, यह मैंने तुम्हें पहले बतला दिया है। हम तुम्हें श्री प्रभु जी के चरित्र सुनाया करते हैं क्योंकि वे सद्‌गुरु हैं। सद्‌गुरु कौन हुआ करते हैं? **'यत्रावच्छेदनार्थ कालो न उपावर्तते'** जहाँ पर काल नहीं पहुँच पाता, वह सद्‌गुरु सत्ता है। जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य चमकता है, वायु बहती है, वह सत्ता ही सद्‌गुरु सत्ता है। यदि तुम भगवान की कथायें सुनते हो, तो यह भी बहुत उत्तम बात है। इससे भी तुम बहुत पुण्य कमा लेते हो। जितनी देर तक कथा सुनते हो, तुम्हारा मन भगवान के चरणों में ही लगा रहता है। तो यह समय का सबसे बड़ा सदुपयोग है। कथा–संकीर्तन सुनने से बाह्य धारणा तो बन ही जाती है। इसके बाद ध्यान में बैठकर अपने इष्ट का चिन्तन करना चाहिये। सतोगुण को बढ़ाना चाहिये। इससे अन्तः प्रकाश होता है। रजोगुण तमोगुण से बीमारी आती है। जंगलों में रहने वाले तपस्वी स्वस्थ रहा करते हैं। मन्त्र जप व ध्यान से मन में तेजस परमाणुओं का प्रवाह रहता है। मन्त्र जाप से शीघ्र ही सतोगुण का उदय होता है। तुम्हें जो मन्त्र मिला है, यह काल भक्षिणी अजपा गायत्री है। बचपन में हमें वृन्दावन में एक महात्मा मिले थे। वे कहते थे– छः माह इस अजपा साधन से सिद्ध हो गये हैं। बात ठीक भी है ऐसा विधान भी है साढ़े तीन करोड़ जाप किया जावे तो सकल सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती है। यदि गुरुदेव अन्तराय हटा दें तो सिद्धियाँ काम करने लग जाती हैं। योगी साधक का संकल्प ही सब जगह काम करने लग जाता है। जहाँ घरों में श्रीप्रभु जी की आरती होती है, वहाँ कोई कुप्रभाव नहीं होता। यदि कोई कुप्रभाव करता है, तो करने वाले का ही अनिष्ट होता है। स्त्री जाति में यदि सुधार हो जाये तो सुसंस्कृत सन्तति होती है। महिला सत्संग का यही उद्‌देश्य है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में कम से कम छः गुणा श्रद्धा अधिक होती है। स्त्रियों के द्वारा घर में बच्चों का सुधार हुआ करता है। अस्तु! मेरे कहने का अभिप्राय वीतराग पुरुषों में अपने मन को लगाओ। उनकी कथायें सुनो–दिव्य चरित्र सुनो। इस प्रकार से श्रद्धा को बढ़ाते–बढ़ाते योग विधि से अपने मन और बुद्धि को उनमें लय करते चले जाओ, उनके ध्यान से लयता चट–पट होती है। यदि वे ध्यान में दीखने लग जाते हैं तो **''यं यं चिन्तयते कामं तं तं आप्नोति निश्चितम्''** साधक की सभी कामनायें संकल्प मात्र से पूरी हो जाती हैं इसलिये अपने आप को योग परायण बनाओ। जो ऐसा करेंगे श्री प्रभु जी की कृपा होगी –भला होगा। ❊ ❊ ❊

परम गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

भगवान् की तरह महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। हर व्यक्ति इस रहस्य को नही जान सकता। वह अजन्मा निर्गुण एवं विभु होने पर भी देहधारी होकर मनुष्य को परमोत्कर्ष तक ले जाने के लिये मानवीय धरातल पर उतरकर मानवीय आचरण करते हैं। ऐसे महापुरुष समय–समय पर हर युग में प्रकट होते रहते हैं। परमप्रभु श्री रामलाल जी महाराज भी ऐसे ही दिव्य महापुरुष हैं। श्री महाप्रभु जी ने इस कलिकाल में अनादि विद्या **योग** का पुनः प्रचार–प्रसार किया है। आप अपने भक्तों के लिये साक्षात् महेश्वर के रूप में आराध्यदेव हैं। अपने भक्तों के मानोवांछा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष के समान हैं। लाखों वर्ष पूर्व महर्षि काक भुसुण्डी ने अपनी 'काकनाडी' संहिता में इनके दिव्य जन्म एवं कर्म का विस्तार से वर्णन किया है। यह संहिता मद्रास में रामपेठ में एक पुस्तकालय में उपलब्ध है।

इस भविष्यवाणी के अनुसार ही गुरुओं की परमपावन नगरी अमृतसर में विक्रम संवत १९४५ को चैत्र शुक्ल नवमी, बृहस्पतिवार को वृषलग्न में स्वानामधन्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पं० 'गण्धाराम' जी के घर में आपका आविर्भाव हुआ। आप की परमपावनी माता का नाम भागवन्ती देवी था। सारस्वत वंश में जोशी वंश प्रसिद्ध उज्जवल वंश है। इसी वंश में पंजाब प्रान्त में जालन्धर में एक पुण्यात्मा हरिराम जोशी जी हुये। सतलुज नदी में बार–बार बाढ़ आने के कारण आप का परिवार जिला लाहौर में नौशहरा गाँव में बस गया। इन्हीं की पाँचवी पीढ़ी में पं० चढ़तराम जी अत्यन्त धर्मात्मा व वैराग्यवान महापुरुष हुये। पुत्ररत्न का समाचार पाते ही अपने को पितृऋण से मुक्त मान कर किसी को बिना बताये घर से भगवदाराधना के लिये चल पड़े। बहुत पता लगाने पर भी आपके पते–ठिकाने का कोई पता नहीं चला।

नवजात शिशु का नाम पं० साईदत्त रखा गया। आप भी बाल्यकाल से ही भगवत् प्रेमी, परम सदाचारी तथा परमशुद्ध विचारों के थे। बचपन में कई बार कई–कई दिनों तक एकान्त अनुष्ठान में लगे रहते थे। कठोर साधना एवं संयम के फलस्वरूप आपमें अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव होगया। अपने संकल्पमात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मान्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर देना, संकल्पमात्र से वर्षा कर देना आदि–आदि विभूतियाँ आप में सहजरूप में आ गई। आगे इनके दो पुत्र पं० कन्हैयालाल व पं० सुखदयाल हुये पं० कन्हैयालाल जी बहुत ही दयालु तथा विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भागवत् पुण्यशाली

भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका पावन नाम 'गन्डाराम' रखा गया। आगे चलकर आप बहुत प्रसिद्ध ज्योतिषी हुये। आप बड़े तेजस्वी ओजस्वी महापुरुष थे। थोड़े ही दिनों में आप की ख्याति चतुर्दिक–फैल गई। आप की तपस्या एवं विद्वता का सुफल यह मिला कि परम पुरुष महाप्रभु ने कुल को प्रकाशित कर दिया। महाप्रभु जी सदैव मुक्त, सदैव सिद्ध महापुरुष हैं। त्रयताप से झुलसते हुये मनुष्यों को त्राण देने के लिये नित्य कूटस्थ स्थिति में रहने वाले महायोगी करुणार्द्र होकर निर्माण काय विधि से एक साथ अनेकों शरीरों को धारण करके जीवों को योगामृत के ब्रह्मानन्द का पान कराने के लिये सद्‌गुरु के रूप में जगह–जगह पर प्रकट होते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक थी। इसी कारण से बहुत जल्दी ही आप की ख्याति एक अवतारी पुरुष के रूप में फैल गई। पूज्य पिताश्री ने आप का नाम 'रामलाल' रखा। 'जो दायक फल चार' अपने भक्तों को धर्मादि चारों पदार्थ देने वाले आपका यह नाम सार्थक होने लगा। थोड़ा बड़ा हो जाने पर पिताश्री ने शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही रखा। जो सर्वज्ञ हैं उन्हें भला कोई क्या पढ़ा सकता है? जो अध्यापक इन्हें पढ़ाते थे उन्हें ये अपनी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित कर देते थे।

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद १५ वर्ष की अल्पायु में ही शास्त्राध्ययन की दृष्टि से गृहत्याग कर तीर्थाटन के लिये निकल पड़े। आपने कुरूक्षेत्र, हरिद्वार तथा काशी जी में रहकर शास्त्राभ्यास किया। आप विरक्त वेश में काशी जी में रहे। धर्म के नाम पर तांत्रिक विधि से अनाचार करने की 'भैरवी चक्र' के कुप्रथा को आपने ही योग बल से सदा के लिये समाप्त कर दिया। आप पर तांत्रिकों ने बहुत प्रकार से शक्तिप्रहार करने का असफल प्रयास किया। तीर्थों के दर्शन के प्रसंग में आप श्री वृन्दावन धाम पहुँच गये। समस्त बृज क्षेत्रों के दर्शन करते हुये आप आगरा जिला के बरहन गाँव में पहुँच गये। वहाँ आपके योगविभूतियों के प्रभाव के कारण आपके बहुत से भक्त बन गये।

वहाँ से आप संवाई गाँव में आ गये। वहाँ पर ठा. प्यारे लाल आदि आपके अनेक भक्त बन गये। अब यहाँ लोगों की भीड़ उमड़ने लगी। जो जिस कामना से आता उसकी वह कामना पूरी हो जाती। आपके आत्मशक्ति से लोगों की आधिव्याधि स्वतः दूर होने लगी। अब आप हिमालय की ओर जाने लगे तो लोगों ने अत्यन्त विनय करके आपको रोक लिया और निर्विघ्न रूप से समाधिस्थ रहने के लिये गुफा का निर्माण कर दिया। भक्तों ने प्रार्थना की कि आप यहाँ से कहीं अन्यत्र न जायें। यह सन् १६११ की बात है। आप के इस पवित्र स्थान पर विराजमान रहने से गाँव में सर्वत्र खुशहाली रहने लगी। लोगों के रोग शोक दूर होने लगे। किन्तु यह अनुपम सौभाग्य भक्तों को बहुत दिन तक नहीं प्राप्त हो सका। आपमें इस अल्पायु में (२०–२१) ही अणिमा, महिमा आदि महासिद्धियाँ प्रकट थी। आप 'अणिमा' से गुफा से बाहर निकल गये और आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चल दिये। गाँव के एक किसान ने इस प्रकार से आकाश मार्ग से जाते हुये आपको देखा और सभी ग्रामवासियों को यह घटना बताई। इस घटना को सुनकर भक्तलोग अत्यन्त अधीर हो गये। श्री प्रभु जी की

आकाशवाणी हुई। 'तुम लोग चिन्ता मत करो। हम बार. वर्ष के बाद फिर आवेंगे।

नेपाल हिमालय की ओर जाते हुये मार्ग में आपने 'रामरती' नामक पतिता महिला का उद्धार किया। उस पर शक्तिपात करके उसे योगिनी बना दिया और १०-१२ वर्ष की अखण्ड समाधि दे डाली। इतिहास में ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं। आप हिमालय में अपने गुरुदेव अनन्त श्री महाप्रभु सदाशिव के पास पहुँच गये। वहाँ कुछ दिन रहने के पश्चात उनकी आज्ञा से संस्कारी भक्तों को योग का अमर पथ बताने के लिये नीचे उतर आये। योग के अमर सन्देश का जन-जन में प्रचार-प्रसार करने के लिये आपने योग साधन आश्रमों की स्थापना की। १९२१ के लगभग योग साधन आश्रम ऋषिकेश की स्थापना की। तत्पश्चात अमृतसर, लाहौर, छहरटा आदि स्थानों पर आश्रमों की स्थापना की। आपके प्रमुख शिष्यों में योगिराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी, ऋषिदेवी आदि हुये। इन्होंने आपके दिव्य संदेश का बहुत प्रचार किया। उसी समय का कार्य विस्तार ही था जो आज जन-जन तक मीडिया के माध्यम से पहुँच रहा है। मीडिया के माध्यम से योग का बहिरंग साधन समाज में प्रचारित हो रहा है किन्तु अन्तरंग योग के अधिकारी तथा अभ्यासी विरले ही होते हैं जो श्रीप्रभु जी के परम्परा से जुड़कर योग के यथार्थ्य को समझकर आत्मज्ञान के लिये साधनारत होते हैं। वस्तुतः मनुष्य का परम कल्याण इसी में निहित है कि वह योगारूढ़ होकर योग की भूमिकाओं को क्रमशः प्राप्त करता हुआ आत्मलाभ की ओर बढ़ जाये। जीव की मुक्ति योगमार्ग पर चलकर समाधि लाभ करने से ही संभव है। प्रशिष्यों के द्वारा उनका सर्वसाधारण में प्रचार हो रहा है। साधक अपनी श्रद्धा तत्परता एवं अधिकारी भेद से इस मार्ग में चलकर लक्ष्य को पाया करता है।

श्री प्रभु जी का योगमार्ग 'सिद्धयोग' का मार्ग है। सिद्धों की कृपा से, शक्तिपात से अधिकारी शिष्यों की प्रसुप्त शक्तियाँ जाग्रत होती हैं। उत्तरोत्तर योग की भूमिकाओं में साधक प्रवेश पाता है।

आनन्दकन्द करुणावरूणालय श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का ११७ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में १६,१७ व १८ अप्रैल को बड़े ही धूम-धाम से मनाया जा रहा है। श्री प्रभु जी से सम्बन्धित जितने भी आश्रम व संस्थायें भारत व विदेश में हैं सभी में श्री रामनवमी का यह उत्सव हर्ष एवं परम उल्लास के साथ मनाया जा रहा है। श्री प्रभु जी के बच्चों के लिये यह परम पावन दिन है।

आइये! हम सब बच्चे उनके इस महान पर्व को मनायें तथा साधना के मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ते जायें। इस मंगल बेला पर 'सिद्धयोग-सिद्धगुफा' परिवार के सभी सदस्यों का श्री प्रभु जी के परमपावन अभयप्रद चरण कमलों में कोटि-कोटि नमन !

* * *

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

बालकृष्ण दास वैरागी का प्रभु चरणों में आगमन एवं योगदीक्षा

अमृतसर के दुर्ग्याना मंदिर परिसर में लक्ष्मी नारायण मन्दिर के दक्षिणी भाग में भैरव जी का एक प्राचीन मंदिर है। वहाँ एक बार एक भैरव सिद्ध महात्मा आये। वे महात्मा धन और मान प्राप्त करने के लोभ में अपने सिद्ध किये हुए भैरव की शक्ति से लोगों के अच्छे–बुरे सब प्रकार के काम कर दिया करते थे। संयोगवश श्री प्रभु जी से ईर्ष्या रखने वाले कुछ लोगों को भी उस महात्मा के दर्शन हुए। उपयुक्त आया जानकर उन लोगों ने उस महात्मा से प्रार्थना की– महाराज! यहाँ एक गृहस्थ ब्राह्मण ने बड़ा ढोंग रचा रखा है, उसके शिष्य उसे साक्षात् भगवान सदाशिव और विष्णु कहकर पूजते हैं, उसके पास कोई सम्मोहन शक्ति है जिसके द्वारा वह अपने पास आने वाले हर व्यक्ति को अपने जाल में फंसा लेता है और उससे अपनी सेवा करवाता है। आप अपनी शक्ति से उसके इस प्रपंच को समूल नष्ट करके भोले–भाले लोगों को भटकने से बचाइये। यदि उसका यह पाखण्ड समाप्त हो गया तो हम लोग तन–मन–धन से आपकी सेवा करेंगे और सदैव आपके आभारी बने रहेंगे। उन लोगों की बात सुनकर महात्मा बड़े अहंकार पूर्वक प्रभु दरबार में पहुँचा और जाते ही अपशब्दों का प्रयोग करने लगा। वह बोला–"तूने यह क्या पाखण्ड फैला रखा है? तू अपने को ईश्वर कहकर पुजवाता है। यदि तू अपनी खैरियत चाहता है तो यह पाखण्ड को छोड़कर शीघ्र ही यहाँ से कहीं दूर चला जा। नहीं तो हम अपनी योगशक्ति से तुझे सीधा कर देंगे।" प्रभु जी उसके कटुवचनों से क्षुब्ध हुए बिना बड़े शांत भाव से बोले– महाराज! हम तो एक साधारण ब्राह्मण हैं और आप बहुत बड़े महात्मा हैं। महात्मा को ऐसे कटु शब्दों का प्रयोग करना शोभा नहीं देता। प्रभुजी के द्वारा इस प्रकार मान दिये जाने पर उसका अहंकार अधिक बढ़ गया और शान्त होने की बजाय वह और अधिक कटु शब्दों का प्रयोग करने लगा। प्रभुजी फिर भी शान्त रहे। उस समय ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी वहाँ प्रभु जी के चरणाविन्दों की सेवा में उपस्थित थे। वे अपने गुरुदेव का और अधिक अपमान सहन नहीं कर सके और प्रभु जी के आन्तरिक भावों का विचार किये बिना ही उस महात्मा को डाँटते हुए बोले–

अरे नीच महात्मा! मैं तुम्हें और तुम्हें यहाँ भेजने वा[illegible] को खूब जानता हूँ। उन त्रिलोक पावन योगेश्वर के योग सामर्थ्य को तुम क्या समझ सकते हो। तुम्हारे ऐसे भाग्य कहाँ कि तुम उनके वास्तविक स्वरूप को जान सको। फिर सामने बैठी बालिका की ओर संकेत करके ब्रह्मचारी जी बोले–' यह बालिका ही तुझे सब कुछ दिखा देगी। आँख खोलकर देख तेरे सामने यह कौन बैठी है? महात्मा ने आँख उठाकर देखा तो आश्चर्य चकित हो गया. सम्मुख बालिका के स्थान पर अष्टभुजी दुर्गा अपने वाहन सिंह पर क्रोध मुद्रा में विराजमान थी। महात्मा द्वारा वर्षों की घोर तपस्या से सिद्ध हुआ भैरव उसे छोड़कर माता की गोद में जा बैठा। माता दुर्गा ने उसे आज्ञा दी–बेटा भैरव! इस दुर्बुद्धि को पीट–पीटकर यहाँ से भगा दो। इसने परात्पर परमात्मा का अपमान किया है। माँ भगवती का आदेश पाते ही भैरव ने त्रिशूल उठाकर उसे पीटना आरम्भ कर दिया। ताड़ना से व्याकुल होकर महात्मा प्रभु जी से क्षमायाचना करते हुए बोला–हे सर्वशक्तिमान प्रभो! मैं आपके इस योगेश्वर्य को नहीं जानता था। अतः अज्ञान में कहे गये कटु शब्दों के लिए मुझे क्षमा करते हुए मेरी रक्षा करें और मेरा भैरव मुझे लौटाने की कृपा करें। हे प्रभो! भैरव के कारण ही संसार में मेरा मान–सम्मान है और यही मेरी आजीविका का साधन है।

दया सागर श्री प्रभु जी उसकी करूण पुकार से द्रवीभूत हो गये। उन्होंने महात्मा का भैरव उसे लौटा दिया और उसे अमृतसर नगर छोड़कर दूर चले जाने की आज्ञा दी। प्रभु जी की आज्ञा शिरोधार्य कर वह महात्मा तत्काल वहाँ से कहीं दूर चला गया।

उसके चले जाने के बाद प्रभु जी ब्र० गोपालानन्द जी से बोले– तुमने हमारे सामने हमारी इच्छा के विरूद्ध शक्ति का प्रदर्शन किया है। अतः तुम हमारे पास से चले जाओ। इस कठोर आदेश को सुनकर ब्र० जी विह्वल होकर रोते हुए बोले–प्रभो! आपके इन अभय प्रद चरण कमलों के अतिरिक्त मेरे लिये ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ मैं चला जाऊँ ?

दीनबन्धो ! मुझ से अपराध हुआ है उसके लिये आप मुझे क्षमा कीजिये और मुझे अपने चरणाबिन्दों से दूर मत कीजिये। ब्रह्मचारी जी के दीन वचनों को सुनकर दया निधान प्रभु जी को दया आ गयी और वे बोले –बेटा! अब हमारे मुख से जो आदेशात्मक वचन निकल गया है। उसका पालन करने के लिए एक बार तुम्हें जाना ही पड़ेगा। परन्तु चिन्ता मत करो, तुम शीघ्र ही लौट आओगे। तुम मौन होकर कहीं भी चले जाना, जो भी व्यक्ति तुम्हें सबसे पहले बुलायेगा और भोजन करायेगा तुम उसी के साथ यहाँ लौट आना। वह हमारा भक्त होगा और उसका यहाँ से सब प्रकार से कल्याण होगा। प्रभुजी का यह आदेश सुनकर

ब्रह्मचारी जी उन्हें प्रणाम करके तत्काल वहाँ से रवाना हो गये। वे अर्धोन्मीलित नेत्र किये सीधे आगे बढ़ते जा रहे थे। अमृतसर नगर से लगभग तीन मील आगे निकल जाने पर सामने एक बाग दिखायी दिया। जिसमें वैरागी महात्माओं की छावनी पड़ी हुई थी। उस छावनी के महन्त स्वामी बालकृष्ण दास वैरागी थे। ब्रह्मचारी जी को विरक्त भाव से आगे निकलते देखकर उन्होंने उन्हें पुकारते हुए कहा–अरे ब्रह्मचारी! तुम इधर आओ हमें बताओ कि तुम किस महापुरुष के शिष्य हो और इस समय कहाँ जा रहे थे। तुम्हारे अर्धोनमीलित नेत्र तुम्हारी उच्च ध्यान स्थिति को प्रकट कर रहे हैं। बताओ तुम इस समय ध्यान से क्या देख रहे हो? ब्र० जी ने अपना मौन भंग करते हुए कहा–जीवों पर परम अनुग्रह करने वाले योगेश्वर प्रभु रामलाल जी का मैं शिष्य हूँ। उनकी अहैतुकी कृपा से मुझे हर समय दिव्यानुभव होते रहते है। यह सुनकर महन्त जी ने ब्रह्मचारी जी से कहा–भाई! मैं भी तुम्हारे गुरुदेव के दर्शन करना चाहता हूँ। इसलिए तुम मुझे भी अपने साथ उनके पास ले चलो। श्री प्रभु जी के वचनों का स्मरण कर ब्र० जी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें श्री प्रभु चरणारविन्दों में लिवा ले गये।

वैरागी जी के मन में अपने विरक्त वेश का अभिमान था। अतः उन्होंने प्रभु जी के चरण कमलों में प्रणाम नहीं किया, प्रत्युत आशीर्वाद की सी मुद्रा में "महाराज की जय हो" इन शब्दों का उच्चारण किया। अन्तर्यामी प्रभुजी ने उन महन्त जी के अन्तर्भावों को जानकर उन्हें आदरपूर्वक एक आसन पर बैठा दिया। थोड़ी देर बाद प्रसंगवश महन्त जी ने जिज्ञासा प्रकट की–प्रभो! क्या इस घोर कलिकाल में भगवान रामचन्द्र जी के दर्शन हो सकते हैं। प्रभु जी ने प्रेमपूर्वक कहा– हाँ अवश्य हो सकते हैं। यह सुनकर महन्त जी ने प्रार्थना की– यदि ऐसा है तो कृपापूर्वक मुझे दर्शन करा दीजिए। प्रभु जी ने उन्हें आज्ञा दी कि यदि तुम अपने इष्ट देव के दर्शन के इच्छुक हो तो जो भी जप और ध्यानाभ्यास तुम हमेशा किया करते थे, वही यहाँ हमारे सामने बैठकर करो, अवश्य दर्शन होंगे। श्रीप्रभु जी की आज्ञा पाकर महन्त जी ने अपना नैत्यिक मन्त्रजाप करना आरम्भ किया। प्रभु जी की कृपा के फलस्वरुप उनका प्रगाढ़ ध्यान लग गया और उसी समय से उन्हें दिव्य अनुभव होने आरम्भ हो गये। इस अलौकिक कृपा को पाकर उन्होंने अपने को कृतार्थ समझा और महन्त पद का मोह त्यागकर अपना शेष जीवन प्रभु जी के चरण कमलों में बिताने लगे।

❊ ❊ ❊

''सद्गुरु वचन हिये विच धारो''

डा. विजय सिंह

वैदिक परम्परा में आने वाले ऋषियों में आरुणी, उद्यालक सत्यकाम जावाल जैसे ऋषि सद्गुरु निष्ठा के अप्रतिम उदाहरण हैं। इस कलिकाल में सद्गुरु निष्ठा से आलोकित जीवन जीने वाले श्री नामदेव, श्री ज्ञानेश्वर जी महनीय वन्दनीय हैं। परन्तु इष्ट एवं सद्गुरु दोनों को एकाकार किये साधना पथ के शीर्ष पर पहुँची हुयी गुरु–भक्ति में ओत–प्रोत संत–योगिनी सहजोबाई जैसा विरला ही उदाहरण दिखाई पड़ता है।

नारी संतों में मीराबाई, लल्लेश्वरी, गोदा, अंडाल जैसे प्रमुख नामों में सहजोबाई का नाम भी सुविख्यात है। संत सहजोबाई महात्मा चरणदास की शिष्या थीं। इनका वाणी संग्रह "सहज प्रकाश" साधना एवं सद्गुरु महिमा को आलोकित करता हुआ ग्रंथ है। अठारहवीं सदी की मीरा इन्हें कहा गया है। सद्गुरु चरणदास ने सहजोबाई को अष्टांग योग में दीक्षित कर, शक्तिपात द्वारा कुण्डलनी जागरण विधि से योगाभ्यास कराया।

अंत में २४ जनवरी, १८०५ में अखण्ड समाधि में लीन काया का त्याग किया। इसके पूर्व सतत कई वर्ष तक समाधि में लगातार लीन रहीं। कबीर दास ने जैसे गुरु की महिमा गोविंद से भी बड़ा बताया:-

गुरुगोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दियो लखाय।।

सहजो और प्रखर रूप में गुरु को परमात्मा से भी ऊँचा और बड़ा मानती हैं।

राम तजूं पै गुरु न विसारूँ। गुरु सम हरि को न निहारूँ।
चरण पर तन मन वारूं। गुरु न तजूं हरि को तज डारूँ।।

यह सद्गुरु पथ अत्यन्त दुरूह है। "शीश दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान"। अहंकार विलोप, माया समर्पण बिना सद्गुरु का संधान कैसे हो सकता है ? कलिकाल ग्रसित जीव लोक प्रतिष्ठा, कामना पूर्ति हेतु गुरु वचन को भूलकर अल्प–जल्प शक्तियों के सामने नतमस्तक होने में देरी नहीं लगाते।

भारतीय वांगमय में गुरु का महत्व सदैव से चला आ रहा है, किन्तु उत्कट गुरु–भक्ति एवं तर्कयुक्ति देखना हो तो सहजोबाई के वाणी में अवगाहन करना होगा। वे गुरु प्रेम में गहरी डूबी हुयी हैं। परन्तु वे सजग हैं। कहीं गुरुडम्ब न लोग अपना लें अतः गुरुओं के प्रकार ओर लक्षण पर भी उन्होंने समुचित प्रबोध किया है।

सहजो गुरु बहु तक फिरें, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं।
तारि सकें नहिं एक को, गहैं बहुत की बाहिं।।

आज भारतवर्ष में ही नहीं, विदेशों में इण्टरनेट, चैनल के द्वारा अपने को योगी गुरु विख्यात करने का व्यापार फैल गया है। जो स्वयं तरा नहीं वह दूसरों का तारण हार का

स्वांग तो रच सकता है परन्तु इनके पीछे उसका मन्तव्य स्व कामनायें है, काम लोलुपता। सहजोबाई सचेत करती है देखें–

ऐसे गुरु तो बहुत हैं, धूत-धूत धन लेहिं।
सहजो सतगुरु जो मिले, मुक्ति धाम फल देहिं।।
बार-बार नाते मिले, लख चौरासी माह।
सहजो सतगुरु ना मिले, पकरि निकास बांह।।

समर्थ सद्गुरु ही जीव को संसार बंधन से छुटकारा दिलाते हैं। संसारी गुरु बहु प्रकार पाखण्ड फैलाकर धूर्तता पूर्वक धन का बार–बार अपहरण करते है।

धूर्त गुरुओं की चर्चा संकेत से करने के साथ ही वे समर्थ सद्गुरु के अतरिक्त चार भिन्न प्रकार के गुरुओं की गणना उनके शक्ति सामर्थ की ओर इशारा करती हुई कहती हैं–

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग।
गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरी गुरु भृंग।।

पारस गुरु वे हैं जो सद्शिष्य (लौह धातु को पारस सोना बनाता है) को अपने शक्ति से श्रेष्ठता के साधना में प्रदान कर सोने के समान श्रेष्ठ बना देते हैं। शिष्य में शिष्यत्व हो तो ऐसे गुरु उसे उच्चभूमिकाओं में आरूढ़ करा देते हैं। परन्तु वे अपने जैसी आत्म स्थिति प्रदान कर सकने में समर्थ नहीं होते। एक निकृष्ट धातु लोहा जैसे पारस स्पर्श से श्रेष्ठ धातु में बदल गया वैसे ही ऐसे गुरुओं द्वारा प्रेरणा रूपान्तरण (आन्तरिक) का कारण बनता हैं। दूसरा प्रकार उस गुरु का है जो शिष्य की चेतना को प्रदिप्त कर देता है। तीसरा गुरु चन्दन जैसा है। चन्दन के संग से गंधवासित हो दूसरी लकड़ियाँ भी चन्दन गंध वाली बन जाती हैं परन्तु तभी तक जब तक चन्दन का संग हो अन्यथा धीरे–धीरे उधार का गंध खोकर पुनः काष्ठ गंध वाला ही रह जाता है। चौथे गुरु भृंग कीटवत अपने, शिष्य को भीतर–बाहर अपने जैसा बना देते हैं।

तथ्यान्वेषी सहजो यहाँ पर गुरु कोटि को समाप्त नहीं करती, इसके आगे बताती हैं–

चरणदास समरथ गुरु, सर्व अंग तिनमाहिं।
जैसे को तैसा मिले, रीता छोड़े नाहिं।।

सजग–सचेत गुरु प्रेम पूरित संत सहजोबाई गुरु–पथ (सिद्धयोग) अनुगामियों को चेतावनी देती हुयी कहती हैं–

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिव माहिं।
ऐसे जन जग में रहे, गुरु को भूले नाहिं।।

अर्थात विवाहिता स्त्री अपने मायके में जाकर भी अपने प्राणप्रिय प्रियतम पति को नहीं भूलती, उसे क्षण–क्षण याद करती है, उसी प्रकार साधक को अपने सतगुरु को स्मरण रखना चाहिए। उसे अपने सांसारिक माया चक्र में भूलाना कदापि नहीं चाहिए।

सहजोबाई की साधन निष्ठा गुरु गीता के स्पष्ट मत से मेल खाता है।

"गुरुदेव जगत्सर्व ब्रह्म विष्णु शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति, तस्मात्संपूजयेद गुरुम।।

अर्थात् सद्‌गुरुदेव ही विश्व रूप हैं, वे ही त्रिदेवों की आत्मा हैं। गुरुतत्व से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। गुरुदेव ही सर्वप्रकार, सर्वभावेन पूज्य हैं।

सहजो गुरु को परमात्मा से भी अधिक बड़ा मानती हैं। उनका दिया तर्क अति मार्मिक है। उनकी गुरु-भक्ति अपूर्व है। देखें-

राम तजूं पै गुरु न विसारूं।
गुरु को सम हरि को न निहारूं।

तर्क देखिये-**हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवागमन छुटाहीं।।**

विषय विकार में लगी पाँच इन्द्रियाँ, आत्म तेज को हरण कर रही है किसके प्रपंच से-

हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा।
हरि ने कुटुंब जाल में गेरी। गुरु ने काही ममता वेरी।।

सहजो बाई के सम्बन्ध में एक कथा यह भी प्रसिद्ध है-

जिस समय सहजो गौने (द्विविवाह) की विदा के लिये श्रृंगार कर रही थी। उन्हें वहाँ आये चरणदास जी का निम्न वचन सुनाई पड़ा-

चलना है रहना नहीं, चलना विस्वे बीस।
सहजो तनिक सुहाग को, कहा गुँथावै शीस।।

श्री सद्‌गुरु भगवान का कथन है "मोर चिते बिलाये पैदा होते हैं"। इतना सुनकर सहजो के संस्कार एक दम जाग उठे। ह्रदय पटल का अंधेरा दूर हुआ। संसार त्याग गुरु-पथ गामिनी बन गयी।

हरि ने रोग भोग उरझायो। गुरु जोगी कर सबै छुटायो।।
हरि कर्म भर्म भरमायो। गुरु ने आतम रूप लखायो।।
हरि ने मोसूं आप छिपायो। गुरु दीपक दै ताहि दिखायो।।
फिर हरि बांध-मुक्ति मतिलाये। गुरु ने सबही भर्म मिटाये।।
चरणदास पर तन मन वारूं। गुरु न तजूं हरि को तज डारूं।।

शिष्य तब तक पूर्णता को प्राप्त न हो जाय अथवा गुरु की आज्ञा जब तक न हो उसे गुरु के बतलाये हुये साधन को गुप्त अन्तःकरण में संजोकर रखना चाहिए। शास्त्रों-पुराणों के नाना मत के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए यह मंत्र श्रेष्ठ कि यह मंत्र श्रेष्ठ। यह ध्यान ठीक कि यह ध्यान ठीक। यह गुरु, यह गुरु के चक्कर में आत्मतेज नष्ट करने के सिवाय क्या हाथ लगना है ? अतः यह वाणी सिद्धयोग पथिकों के लिये हर पल विचारणीय है-

गुरु के वचन हिये बिच धारो। गुरुमुख, गुरु के शब्द सम्हारो।
गुरु के शब्द राह सोई चलना। वेद पुराण कहा लै करना।।
गुण सब गुरु के वचन माही। सहजो शीष सो विसरै नाहीं।।

❇ ❇ ❇

हमारा मन

लेखक : **गुरुदेव का एक प्रिय बालक**

इन पंक्तियों में मेरा प्रयास रहेगा कि गुरुदेव जी से मुझे जो संस्कारों का अमूल्य लाभ हुआ है वह संस्कार आपके लिए विचार का विषय बन जायें। मैंने पिछले लेख में अध्यात्म को समझाने के लिए एक गणित का सूत्र दिया था। उसको अपने जीवन में कार्यान्वित कैसे किया जाय, यह विषय स्पर्श नहीं किया था। ज्ञान तथा अनुभूति अलग-अलग विषय हैं। उनके अन्तर को समझना आवश्यक है। शास्त्रों में कहा गया है कि

"न गच्छति बिना पातं व्याधिः औषधशब्दतः।
बिनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैः न मुच्यते।।

अर्थात् जिस प्रकार रामबाण के समान अमोघ औषधि भी बिना सेवन किये नाम का उच्चारणमात्र से रोग का निदान नहीं कर सकती, इसी प्रकार शब्दों के माध्यम से अध्यात्म का ज्ञान कर्मबन्धन से मुक्ति नहीं दिला सकता जब तक कि उस ज्ञान के रहस्यों का प्रत्यक्ष अनुभव न कर लिया जाय। प्रत्यक्ष अनुभव का एक मात्र माध्यम है "हमारा मन"। शास्त्र मेरे इस विचार की पुष्टि करते हैं कि

"मनः एवं मनुष्यणाः कारणं बन्धमोक्षयोः, बन्धाय विषयाक्तो मुक्तये निर्विषयं मनः"

अर्थात् मनुष्यों के मायिक कर्मबन्धन तथा मोक्ष दोनों का कारण मन ही है। विषय भोगों में आसक्त मन कर्मबन्धन को मजबूत करता है और विषय भोगों से निरासक्त मन ही मोक्ष का कारण है। इसी तथ्य के आधार पर जब राजा जनक ने अष्टावक्र जी तत्वाज्ञानी से मोक्ष का उपाय पूछा तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि-

मुक्तिमिच्छसि तात् चेत् विषयात् विषवत् त्यज।
क्षमार्जवदयातोषाः सन्तोषं पीयूषवत् पिव।।
यदि देहं प्रक्कृत्य चिदि विश्रम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविस्यसि।।

अर्थात् हे राजन, यदि तुम मोक्ष चाहते हो तो, मैं तुम्हें एक बहुत आसान उपाय बताता हूँ। बस अपने मन में यह अटूट तथा अटल निष्ठा अपना लो कि विषय भोग की वासना ही तुम्हारे करोड़ों जन्म-मृत्यु का कारण है। भगवान कृष्ण का वाक्य इसका प्रमाण है कि **"कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु"** अर्थात् वासना ही जन्म-मृत्यु का कारण है। किन्तु यहाँ निष्ठा का अर्थ समझना आवश्यक है जैसे कि विषपान से मृत्यु हो जाती है, इस निष्ठा के फलस्वरूप एक भूखा तथा प्यासा व्यक्ति उस दूध को नहीं पियेगा जिसमें उसकी आँखों के सामने विष मिलाया गया हो। दूसरी बात यह है कि मुक्ति अमृतत्व प्रदान करती है इसलिए तुम्हें क्षमा, निष्कपटता, दया, आत्मसन्तुष्टि तथा सन्तोष रूपी गुणों को अमृत

समझकर ग्रहण करना होगा। ऐसा करने पर तुम्हारा मन सांसारिक चित्तवृतियों को स्वतः त्याग कर शरीर के साथ अध्यास को त्याग कर सच्चिदानन्द परमात्मा में लीन हो जायेगा। बस तुरन्त आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति आरंभ हो जायेगी।

१. संसार का सारतत्व हमारा मन

मैं यह समझाना चाहता हूँ कि मन ही संसार का सारतत्व है। मन ही इच्छा एवं भावना का जन्मदाता है या यूँ कहिए कि संसार रूपी कार्य का कारण है। कार्य सदैव कारण पर आधारित होता है। इसलिए संसार की रचना तथा स्थिति दोनों मन के अधीन हैं। शास्त्रों में वर्णन मिलता है कि–

सोऽकामयत बहुस्यां प्रजाययेति
तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूत
आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः
सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुद्यन्ते।।

अर्थात परमात्मा के मन में कामना हुई कि एक से अनेक होकर उत्पत्ति करूँ। उस विराट स्वरूप से सर्वव्यापक आकाश प्रकट हुआ, आकाश से वायु और वायु से अग्नि प्रकट हुई और तत्पश्चात जल, पृथ्वी, आदि पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मन, इन्द्रियों तथा उनके विषयों के साथ समस्त संसार की उत्पत्ति हुई। इसी कारण जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि–

यावत् संजायते किंचित् सत्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञसंयोगात् तद् विद्धि भर्तर्षम्।।

अर्थात् हे अर्जुन! जो कुछ भी जड़ तथा चेतन जगत दिखाई दे रहा है वह सब कुछ प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से ही उत्पन्न हुआ है। सारतत्व यही निकला कि व्यष्टि तथा समष्टि का मन ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश का कारण है। मन में उत्पन्न होने वाली श्रद्धा तथा भावना ही संसार के लक्ष्य तथा उद्देश्यों को निर्धारित करती है, यहाँ तक कि–

"तं यथा यथोपासते तदेव भवति"

अर्थात् मन जिस जिस भावना तथा श्रद्धा से परमात्मा की उपासना करता है, वह सर्वाधार तथा सर्वव्यापी परमात्मा उन्हीं रूपों में प्रकट होता रहता है। मन की शक्ति से ही नाम तथा रूप की सृष्टि का संचालन होता है, इसी कारण गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि "जाकी रही भावना जैसी, प्रभुमूरत देखी तिन तैसी" अर्थात् मन की भावना के अनुसार ही परमात्मा संसार का रूप धारण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रोजेक्टर से निकलने वाली प्रकाश किरणें उसमें लगी फिल्म का रूप ही परदे पर चलचित्र के रूप में धारण कर लेती हैं। दृश्य–जगत के विषय में महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि–

"प्रकाशस्थितिक्रियाशीलं भूतेन्द्रयात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्"

अर्थात् यह संसार तथा समस्त ब्रह्माण्ड प्रकृति के तीन मूलभूत गुण यानि सतोगुण (प्रकाश सूचक), रजोगुण (क्रियात्मक) तथा तमोगुण (स्थिति सूचक) और उनके विकारों से निर्मित हुआ है। इन्हीं तीन गुणों से पंच महाभूत, मन, इन्द्रियाँ तथा अहंकार का प्रादुर्भाव हुआ है। यह समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि परमात्मा की योगमाया की विक्षेपशक्ति तथा आवरण शक्ति का परिणाममात्र है जिसके द्वारा पंच क्लेश चित्तवृतियों के माध्यम से जीवात्माओं के लिए भोग उपस्थित करते हैं और उनके अभाव की स्थिति में मोक्ष प्राप्त होती है। प्रत्येक जीव का संसार उसके अपने मन की चित्तवृतियों का स्थूलरूप है। मन रूपी प्रोजेक्टर से चित्तवृतियाँ रूपी फिल्म ही इन्द्रियाँ रूपी परदे पर संसार के रूप में दिखाई दे रही हैं। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने वर्णन किया है कि–

"कृतार्थं प्रति नष्टमपि अनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्"

अर्थात् तत्त्वज्ञानी को संसार स्वप्नवत मिथ्या लगता है और वह सर्वदा के लिए सुख–दुख के कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है, फिर भी अज्ञानियों की दृष्टि में यथावत वास्तविक तथा सत्य भाषित होता रहता है। इसका कारण यह है कि **"इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते, तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि"** अर्थात् जिस प्रकार जल में वायु का वेग नाव को अपनी दिशा में खींच लेता है उसी प्रकार इन्द्रियों के विषय भोग की वासना में आसक्त मन भी बुद्धि का हरण कर लेता है। परिणामस्वरूप अनित्य में नित्य, अशुद्धि में शुद्धि, दुख में सुख तथा अनात्मा में आत्मदर्शन होने लगता है और यही अज्ञान का अन्धकार संसार का स्वरूप है।

यह कितनी विचित्र बात है कि संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील तथा अनित्य है, फिर भी उसके खोने या नष्ट होने पर प्राणी दुखी होते हैं, पुत्र की मृत्यु पर माता–पिता संताप करते हैं, सम्पत्ति की चोरी पर दुखी होते हैं, प्रत्येक वस्तु तथा शरीर प्रकृति के पंचभूतों से निर्मित है तथा पृथ्वी का अंश होने से उसमें दुर्गन्ध तथा अशुद्धि स्वभाविक है, शरीर के अन्दर माँस, मज्जा तथा मूत्र आदि दुर्गन्धवाले पदार्थ होते हुए भी सभी अपने तथा अपने प्रियजनों के शरीरों को शुद्ध समझकर प्यार करते हैं, जबकि शुद्धि–अशुद्धि तथा सुगन्ध–दुर्गन्ध केवल मन की अनुकूलता–प्रतिकूलता मात्र है। इसलिए जब तक जीवात्मा मन के वशीभूत है यानि मन की अनुकूलता में सुख तथा प्रतिकूलता में दुख का अनुभव करती है तभी तक इस द्वन्दात्मक संसार का अस्तित्व है। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि–

समं पश्यन् हि सर्वत्र समावस्थितं ईश्वरम्।
न हिनस्त्यति आत्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।

अर्थात जब जीवात्मा अपने मन पर नियन्त्रण कर उसे द्वन्दों की समतावस्था में कर लेता है तब सदैव समतावस्था में अवस्थित परमात्मा के ही कण–कण में सर्वत्र दर्शन करने

लगता है। वह जब अपने द्वन्दात्मक मन के द्वारा अपना हनन नहीं करने देता यानि सुख–दुख की रिस्सारिता को समझकर अपने मन को सभी द्वन्दों से मुक्त कर लेता है तब स्वतः गुणों की समतावस्था को प्राप्त कर परमार्थ सिद्धि प्राप्त कर लेता है, किन्तु यह बहुत कठिन कार्य है और इसकी सिद्धि के लिए परमात्मा की शरणागति परम आवश्यक है, क्योंकि भगवान कहते है कि–

देवी ह्यैषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायमितां तरन्ति ते।।

अर्थात् मेरी इस त्रिगुणात्मक मनोमय माया पर विजय पाना बहुत ही कठिन कार्य है। इस माया पर वही जीवात्मा विजय पा सकते हैं जो मेरा आश्रय लेकर योगाभ्यास करते हैं और अपने मन को विषय–भोगों के आकर्षण से मुक्त कर लेते हैं।

२. परमार्थ सिद्धि में मन का महत्व

हमारा मन बहुत स्वार्थी है और इन्द्रियों का राजा है। उपनिषदों में एक बहुत सुन्दर रूपक मिलता है कि परमार्थसिद्धि एक बहुत ऊँची पर्वतश्रृंखला के शिखर पर एक दिव्य मन्दिर है जहाँ पर जीवात्मा को एक टेढ़े–मेढ़े गुप्त मार्ग से पहुँचना है। परमात्मा ने इस यात्रा की सुविधा के लिए उसे मनुष्य–योनि रूपी रथ दिया है जिसमें बुद्धि रूपी लगाम लगी है। इस मार्ग में से स्थान–स्थान पर अनेक उपमार्ग है जोकि विषय–भोगों रूपी हरी–हरी घास के खेतों में ले जाते हैं। अश्वों का स्वभाव है कि कि हरी घास खाने को पग–पग पर लालायित रहते हैं, इस मन रूपी लगाम मर बुद्धि का नियन्त्रण तनिक भी कमजोर हुआ कि रथ उपमार्ग पर अग्रसर हो जायेगा और साधना के कठिन मार्ग को छोड़ देगा। जब तक मन का स्वार्थ इन्द्रियों के स्वार्थ के अनुकूल होगा, तब तक परमार्थसिद्धि को प्राप्त करना असम्भव होगा। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मन को क्षणिक तथा भ्रान्तिजन्य सुखों में भटकने से रोका जाये और उसे परमार्थ की ओर जाने वाले श्रेयमार्ग पर चलने को निन्तर प्रेरित किया जाये। इस निष्ठा के लिए जगदात्मा श्रीकृष्ण के उपदेशों पर पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास के साथ अमल करना होगा। भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट वर्णन करते हैं कि–

ये हि संस्पर्शजाः भोगाः दुखयोनयः एव ते।
आगमापायिनो अनित्यांश्च न तेषु रमते बुधाः।।

अर्थात् यह जो इन्द्रियों के विषय भोग हैं, वह सब के सब केवल दुख के कारण मात्र हैं, क्योंकि वह इन्द्रियों के विषयों से सम्पर्कमात्र के काल में सुख की भ्रान्ति देते हैं, पाप तथा पुण्य कर्म के फलस्वरूप मन में गुणात्मक प्रवाह के अनुसार क्षणिक अनुभूति देकर नष्ट हो जाते हैं, अतः अनित्य तथा नश्वर है। इस कारण बुद्धिमान पुरुष इन भोगों की दलदल में नहीं फंसते। इनकी एक और विशेषता है कि–

कन्डुमानेन यत् सुखं स्यात् तत् किं भवेत सुखम्।
पश्चात् यत्र महापीड़ा तथा वैषयिकं सुखम्।।
"परिमाणताप संस्कार दुःखैं गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्व दुखमेव विवेकिनः"

अर्थात् खुजली के रोगी को खुजाने में भी सुख की भ्रान्ति होती है तो क्या इसको सुख माना जाये जहाँ खुजाने के बाद रोग तथा पीड़ा दोनों की वृद्धि हो जाती है। इस विषयों के भोग से प्राप्त सुख भी इसी प्रकार जन्म–मरण तथा पापकर्मों की पीड़ा के कारण बनते हैं। इतना ही नहीं कि वास्तव में विषयसुखों में गुप्तरूप से दुख ही दुख रहता है, क्योंकि इनका परिणाम जन्म–मरण के दुख के साथ एक अजीब विडम्बना को जन्म देता है, वह है मन स्वभाव से अपने अहंकार की सन्तुष्टि के लिए पापकर्मों में प्रवृत्त रहता है, पुण्यकर्मों में उसकी रूचि नहीं होती, किन्तु प्रकृति के अटूट नियम के अनुसार सुख पुण्यकर्म का फल है और दुख पापकर्म का। अतः जो वह चाहता है वह उसे मिल ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त उसके दुष्कर्मों के संस्कार कर्माशय में एकत्र होते रहते हैं जो उसका प्रत्येक योनि का प्रारब्ध बनाते हैं और मोहवश अपने स्वजनों से निरन्तर वृत्तिविरोध कर युद्ध प्रत्येक योनि में अग्रसर रहता है। ऐसा क्यों घटित होता है इसका कारण है–

"विषयेन्द्रियसंयोगात् यदग्रे अमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतम्।।"

अर्थात् विषय–भोगों का इन्द्रियों के अपने विषय–रस के साथ संयोग होने से सतोगुण सुख की बाह्य–भ्रान्ति देता है और इस प्रत्यक्ष में अमृत जैसा प्रतीत होता है किन्तु उसका परिणाम विषरूप ही होता है, क्योंकि यह क्षणिक सुख ही निम्नयोनियों में जन्म लेने का कारण बन जाता है। यह जो इन्द्रियों के माध्यम से विषयभोग का सुख है इसकी वासना ही अज्ञान है जिसके अन्धकार में अपना अनन्त आनन्दस्वरूप आत्मा माया के आवरण से ढ़क गया है। यही अविद्या आवरण हमारी परमार्थ सिद्धि में बाधक है। यह केवल हमारा अहंकार है जो पाप–पुण्यों के कर्मजाल में मन को फंसाकर रखता है तभी तो भगवान कृष्ण कहते हैं कि–

नादत्ते कश्चित् पापं नसुकृतं विभुः
अज्ञानेन आवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

अर्थात् सर्वव्यापी आत्मा न तो पाप को ग्रहण करती है और न पुण्य को। यह तो अज्ञान के अन्धकार ने अपने सत्यस्वरूप ज्ञान को आच्छादित कर रखा जिसके कारण मन में उत्पन्न सुखों–दुखों से जीवात्मा मोहित है। **"दुःखादयः यो मनसो विकाराः"** यानि दुःख आदि केवल मन में उत्पन्न गुणों के विकारमात्र हैं। यदि हम इनसे मुक्ति चाहते हैं तो अपने मन को नियन्त्रित कर उसको श्रेयमार्ग पर चलने के लिए अपनी बुद्धिरूपी सारथी के माध्यम से प्रेरित करना होगा।

भगवान कृष्ण ने भी हमें यही उपदेश दिया है कि–

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चितो युक्तः आसीत मत्परः।।
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मतस्थां अधिगच्छति।।

अर्थात् मुझ परमात्मस्वरूप में स्थित परम सुख तथा शान्ति को वह योगी ही प्राप्त कर सकता है जिसने अपने मन को अपने वश में करके उसमें उत्पन्न होने वाली चित्तवृतियों के द्वन्द को समाप्त कर दिया है, जो पूर्णरूपेण भयरहित हो गया हो, जिसने विषय–भोगी से परम वैराग्य प्राप्त कर अपने परम शान्त स्वरूप में स्थिति प्राप्त कर लिया हो। यहाँ पर उपनिषदों में कही गयी मन की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है कि–

"अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो, यथा क्रतुरस्मि लोके पुरुषो भवति
तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत" (छा० ३/१४/१,२)

अर्थात् यह जीवात्मा संकल्पमान है, उसके मन में जैसी भावना पनपती है वैसा ही संसार में उसका व्यवहार होता है, उसका संकल्प ही उसकी श्रद्धा को प्रदर्शित करता है, यहाँ तक कि शरीर छोड़ते हुए भी उसकी वही भावनायें उसे भिन्न–भिन्न योनियों में ले जाती हैं यानि **"याद्दशी वासना मूले वर्तते जीवसंगिनिः तादृशं वहन्ते जन्तुः क्रत्याक्रत्यविधी भ्रमम्"** अर्थात् उसके ह्रदय में बसने वाली वासना जीवात्माओं को जन्म–मरण के चक्रव्यूह में फाँसे रखती है। अतः हमारा मन ही वासनाओं के मायाजाल में फाँस कर हमें भोगों में फँसाता है और हमारा मन ही दैवी सम्पत्तियों को अपनाकर परमार्थ सिद्धि दिला देता है।

३. क्रियायोग और हमारा मन

जैसा कि हम पूर्व लेख में वर्णन कर चुके है कि अध्यात्म–सिद्धि के लिए अन्तःकरण की शुद्धि एक आवश्यक शर्त है। गणितज्ञ इसका महत्त्व समझते हैं। हमारा अन्तःकरण मन में उत्पन्न होने वाली आसुरी तथा दैवी भावनाओं का समुच्चय है। दैवी भावनायें वह शुद्ध सतोगुण है जिसमें परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है, ठीक वैसे ही कि जैसे शुद्ध जल में हम अपना प्रतिबिम्ब देख पाते हैं, किन्तु आसुरी भावनायें रजोगुण तथा तमोगुण से होने वाली वह धूल–मिट्टी तथा कीचड़ है जो जल में मिलकर प्रतिबिम्ब को छिपा देती है। क्रियायोग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा रजोगुण तथा तमोगुण की गन्दगी को साफ किया जाता है। मुख्यतः क्रियायोग के तीन अंग हैं–

"तपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः"

अर्थात् तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर की शरणागति संयुक्त रूप से क्रियायोग कहलाते हैं। अतः इन तीनों अंगों को समझना अति आवश्यक है। तप की परिभाषा है **"द्वन्द्वसहनं तपः"**

अर्थात् मायानगरी के द्वन्द्वों को सहर्ष सहन करना तप है। यह द्वन्द्व वह विकारयुग्म हैं जो हमारे मन को आकर्षित या विकर्षित करते हैं यानि "भावाभावेषु पदार्थानां हर्षशोकविकारता" अर्थात् किसी भी सांसारिक पदार्थ अथवा परिस्थिति की उपस्थिति या अनुपस्थिति में मन के अन्दर हर्ष या परिताप की भावना का उत्पन्न होना ही विकार–युग्म है। इस द्वन्द को सहन करने का अर्थ है कि दोनों स्थितियों में मन समानरूप से प्रसन्नता का अनुभव करे। भगवान श्रीकृष्ण भी इसी अर्थ की पुष्टि करते हैं–

"रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।"

अर्थात् वह पुरुष ही अपने मन में प्रसन्नता का अनुभव करता है जिसने अपने मन के अनुकूलता तथा प्रतिकूलता के विकारों पर नियन्त्रण कर उसे अपने वशीभूत कर लिया है, विषय–भोगों को भोगते हुए जिसके मन में उनके प्रति राग तथा द्वेष भावना नहीं बनती। परिणामस्वरूप मन समतावस्था में लीन हो जाता है, यह समतावस्था । परमात्मा के मन तथा बुद्धि की अवस्था है। इसीलिए जो जीवात्मायें अपने मन तथा बुद्धि को परमात्मा के मन तथा बुद्धि में समाहित कर लेते हैं, वह जीवभाव को त्याग कर परमात्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं। स्थूलरूप से तप करने के तीन माध्यम हैं वह है, शारीरिक तप, वाणी का तप तथा मानसिक तप। गीता में भगवान कृष्ण ने बताया है कि–

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शोचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं प्रियं सत्यहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाँगमय तप उच्यते।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

अर्थात् स्थूल शरीर के माध्यम से देवताओं, ब्राह्मणों, गुरुदेव तथा ज्ञानीपुरुषों की पूजा तथा उपासना करना, बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि करना, छल तथा कपट को सर्वथा त्यागकर शुद्ध आचरण का अभ्यास करना, ब्रह्मचर्यादि नियमों का पालन करना, यानि पूर्ण तत्परता तथा उत्साहपूर्वक यमों तथा नियमों का पालन करना शारीरिक तप कहलाता है। अपनी वाणी से प्राणीमात्र के लिए सुखदायी शब्दों का प्रयोग करना, सदैव सत्य बोलना, सत्यवाणी में भी प्रियता का गुण होना जोकि सब के लिए हितकारी हो तथा मन्त्रजपादि के द्वारा निरन्तर साधना में व्यस्त रहना वाणी का तप है। मन में सदैव प्रसन्नता की लहर, कोमलता की लहर तथा मृदुयता की लहर का बहना और सद्विचारों का धाराप्रवाह चलते रहना मानसिक तप है। इस प्रकार की तपसाधना से अन्तःकरण शुद्ध होता जायेगा।

दूसरा अंग है "स्वाध्याय" इसमें मन को सांसारिक वृतियों से मुक्त कर उसे परमात्मा

के स्वरूप में एकाग्र करते जाने का अभ्यास करना होता है। इस अभ्यास तथा वैराग्य की साधना से ही चंचल मन अपने वशीभूत होता है और वशीभूत मन ही समाधि में प्रवेश करने का अधिकारी होता है। मूलतत्व यही है कि स्वाध्याय, ध्यान तथा समाधि की साधना से ही परमात्मतत्व प्रकाशित होता है। इस साधना में अनेक–अनेक अन्तःराय भी आते हैं और उनकी निवृति का एकमात्र उपाय है गुरु तथा ईश्वर की शरणागति। मन इतना शक्तिशाली तथा हठी है कि न चाहते हुए भी इन्द्रियों के विषयों के सम्पर्क में आते ही हठात् विषय–भोगों में लिप्त हो जाता है, यहाँ तक कि ज्ञानी तथा विद्वान पुरुषों के मन को भी इन्द्रियाँ अपने विषयों में आकर्षित कर लेती हैं। परमात्मा की त्रिगुणात्मक माया का ऐसा अजीब खेल है कि **वह मनोवृतिजन्य सुख का आभास पदार्थों में दिखा रही है। एक ही पदार्थ से भिन्न–भिन्न** मनोवृतियों में भिन्न–भिन्न सुख की अनुभूति होती है। उदाहरण के रूप में मृतशरीर की दुर्गन्ध मनुष्यों के लिए दुखदायी किन्तु गिद्धों के लिए सुखदायी, एक प्रेमिका लम्बे वियोग के बाद जब अपने प्रेमी को स्पर्श करती है तो भिन्न कामसुख का अनुभव करती है, किन्तु वही स्त्री शरीर जब अपने पिता या भाई का शरीर स्पर्श करता है तो भिन्न मोहसुख का अनुभव करती है। जागृतावस्था में पदार्थों से जो विषय सुख मिलता है, वही विषयसुख स्वप्नावस्था में पदार्थों की अनुपस्थिति में मिलता है। इसी कारण जगदात्मा श्रीकृष्ण बताते हैं कि–

"तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चा नघ।।"

अर्थात् इन्द्रियों के माध्यम से जो सुख तथा ज्ञान का अनुभव होता है वह माया के सतोगुण का विकारमात्र है जो भ्रान्तिजन्य है और जीवात्मा को सुख तथा विषयज्ञान की भ्रान्ति में बांधकर रखता है। इस भ्रान्ति के परिणामस्वरूप हम कूपमन्डूक की भांति शरीर की ज्ञानेन्द्रियों के बन्धन में हैं। हम अपने विश्वात्मा स्वरूप को नहीं देख सकते। अपने अहंकार के बल पर हम इस असहाय तथा विवश परिस्थिति से बाहर निकलने में असमर्थ हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने चेतावनी दी है कि–

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।"

अर्थात् मेरी जो त्रिगुणात्मक माया है उसके बन्धन से जीवात्मा अपने अहंकार के बल पर मुक्ति नहीं पा सकती। इस माया के बन्धन से मुक्ति उसी को प्राप्त होगी जो मेरी शरणागति प्राप्त कर सकेगा यानि अपने मन तथा बुद्धि को मेरे मन तथा बुद्धि में समाहित कर सकेगा। अब प्रश्न उठता है कि यह किस प्रकार संभव है? मेरी समझ में यही उपाय आता है कि परमात्मा में समाहित होने के लिए मन में परमात्मा के मन की स्थिति पैदा करना

या ऐसे गुणों को विकसित करना जो परमात्मा को प्रिय हैं। जहाँ तक परमात्मा के मन की स्थिति है, वह ज्ञानस्वरूप है, क्योंकि **''निरतिशयं तत्र सर्वज्ञबीजम्''** अर्थात् उसमें सर्वज्ञता की बीज अनन्तविस्तार वाला है यानि उसका मन तत्वज्ञान का सागर है। इसकी पहचान भी भगवान श्रीकृष्ण स्वयं बताते हैं कि–

''अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
प्राचार्योपसनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्मृत्युजराव्याधिदुखदोषानुदर्शनम्।।
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारग्रहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।।
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।

अर्थात् वह अमानी, अदम्भी, अहिंसक, सदैव शान्तस्वभाव वाला और छल तथा कपट से रहित है, सद्गुरु की भक्ति में सदैव तत्पर, परम शुद्ध यानि मायिक विकारों से मुक्त, स्थिरचित्त तथा पूर्ण संयमित मन वाला है। यह गुण उसमें इसलिए हैं क्योंकि वह शरीर में आसक्ति तथा अहंकार से रहित है। उसे पूर्ण ज्ञान है कि यह गुणात्मक विकार ही जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा शरीर में उत्पन्न व्याधियों के कारण हैं और विषय–भोगों में आसक्ति ही इनका पोषण करती है। पंचभूतात्मक शरीर तथा उससे सम्बन्धित पुत्र–पत्नी आदि का संसार उसे स्वप्नवत निस्सार लगता है अतः उसमें उसके मन को कोई आसक्ति नहीं, वह इष्ट तथा अनिष्ट की मिथ्या चिन्ता से रहित होकर सदैव द्वन्दों की समतावस्था में समाधिस्थ रहता है। वह तो परमात्माचिन्तन में समाधिस्थ, विशुद्ध ब्रह्म की पराभक्ति में लीन, एकान्तभाव में सांसारिक वृत्तियों का नितान्त निरोध कर सदैव आध्यात्मिक तत्वज्ञान की गंगा में स्नान करता रहता है यानि आत्मस्वरूप में पूर्णसन्तुष्ट तथा तृप्त रहता है। बस जब हमारा मन भी ऐसी स्थिति में मग्न रहने लगे तो क्रियायोग की सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है।

योगसाधना के अन्य अंग भी मन की शुद्धिकरण के बिना सिद्ध नहीं हो सकते। हमारा मन ही संसार में फंसाता है और वह ही संसार के दुखों से मुक्ति दिलाता है।

❋ ❋ ❋

गुरुदेव के संस्मरण

जगदीश राय बंसल (गोहाना)

मैं जगदीश राय बंसल (६४ वर्ष) गोहाना में अपनी पत्नी श्रीमती कमला देवी, पुत्र विजय बंसल, पुत्रवधु, पौत्र संयम और पौत्री टीशा के साथ रह रहा हूँ। मैंने सन् १९८७ में सहपत्नी ऋषिकेश आश्रम में गंगा दशहरा के पावन पर्व पर दीक्षा ली थी।

दीक्षा से पहले मुझे गुरु शक्ति का तनिक भी बोध न था। कभी किसी से गुरुओं के विषय में चर्चा चलती तो मेरे गले न उतरती। एक बार अपने ही पूज्य गुरुदेव का कलकत्ता में योग प्रचार कार्यक्रम था। एक मित्र ने मुझे कहा कि 'हरियाणा भवन' में एक बहुत अच्छे महात्मा पधारे हैं। मैंने आदत के अनुसार तपाक से फिब्ती कसी के पिछले माह भी तो पहुँचे हुए महात्मा पधारे थे। यहाँ यह बताना समीचीन होगा कि पिछले माह एक उच्च कोटि के लगने वाले महाराज जी आए थे। जो तीन–चार दिनों पश्चात् शरारत का भांडा फूट जाने से भागने पर विवश हो गए थे।

इस प्रकार एक तरह से मैं गुरु प्रथा के ही विपरीत था। हाँ मन्दिर जाना, पाठ पूजा, उपवास, कीर्तन आदि मुझे पसन्द था।

जीवन का मोड़–मेरे पिताजी ने सन् १९६६ में कस्टोडियन विभाग द्वारा नीलाम किए प्लाटों में से एक प्लाट मेरे नाम से खरीदा था। मैं भी ६–११–६६ को कलकत्ता से गोहाना आ गया था। एक सिर फिरे अर्जीनिविस ने उस प्लाट पर मुकदमा ठोंक दिया कि यह प्लाट मेरा है। मेरे पिताजी ने सरकारी खरीद के गर्व से कोई खास पैरवी न की और दावेदार सिफारिस से, रिश्वत से, अपरोच से दनादन जीतता चला गया। इसी दौरान मेरे पिताजी पंचतत्व में विलीन हो गए। मुझे कोर्ट का कोई ज्ञान न था। कई केस बन गए। एक माह में आठ तारीख लगती थी। कोई गोहाना, कोई सोनीपत, कोई हाईकोर्ट चन्डीगढ़ और कोई सुप्रीम कोर्ट दिल्ली। प्लाट के बढ़े मूल्य से भी अधिक खर्च हो चुका था। ऊपर से परेशानी अलग। मैं निराश हो चुका था।

यूं हुई गुरु कृपा–एक प्रातः मैं इसी उधेड़ बुन में डूबा था कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। मुकदमें से कैसे पीछा छूटेगा। इससे अच्छा तो प्लाट छोड़ दूं। मगर इस तरह से भी हर्जे खर्चे की भारी डिगरी आएगी। तीस साल का मुकदमा हो गया है। इसी मध्य श्री मनोज गुप्ता (गुरुभाई) आ टपका। मैंने उसको अपनी परेशानी से अवगत कराया और समाधान पूछा। मनोज बोला यह कि यह नैय्या तो कोई सिद्ध योगी ही पार लगा सकता है। मैंने कहा कि कहाँ है ऐसे सिद्ध योगी? वह बोला है क्यों नहीं, हमारे गुरु जी हैं। मेरे भाई सुभाष से पूछ लो।

मैं दुकान पर मनोज को बैठा कर तुरन्त श्री सुभाष गुप्ता के पास OBC में गया और

बात की। गुप्त जी ने कहा कि कल ऐतवार है, मैं वहीं आऊँगा तब बात करेंगे। निर्धारित समय पर गुप्ता जी आए। गुरु जी की कुछ बातें बता कर बोले कि आजकल गुरुजी झांसी के कार्यक्रम में हैं। पत्र लिख दो, जब दिल्ली पधारेंगे तब चल पड़ेंगे।

मैं उसके साथ दूकान के सामने, अग्रवाल सत्संग भवन में (जहाँ गुरुजी ने मुझ पर कृपा कर २४–११–८६ से कार्यक्रम रखा था) गया। हाथ–पैर धोकर मन्दिर के सामने बैठ कर श्री गुरुचरणों में विस्तार से प्रार्थना पत्र लिख दिया।

आ गई लहर शिवा के मन में–शीघ्र ही मुझे गुरुजी का पत्र आशीर्वाद पुष्प प्रसाद सहित नसीब हुआ। मैं पत्र को ज्यों का त्यों लेकर गुप्ता जी के पास OBC गया। गुप्ता जी ने मुझे पुष्प, प्रसाद खाने को कहा। **यह मेरे लिए नई बात थी। खैर मैं सीधा घर पहुँचा और** घर में बने छोटे से मन्दिर में बैठ का महाप्रसाद ग्रहण किया।

समय अन्तराल के साथ शनैः–शनैः चार मुकदमें खारिज हो गये। इस प्रकार आशीर्वाद के चलते अन्ततः अर्जीनिविस से समझौता हो गया। पूरे ३१ वर्ष पश्चात् छुटकारा पाया।

आत्मा परमात्मा का मिलन–गुरुजी का हाथ अपने सिर पर मानकर मैं उस शुभ दिन की राह जोहने लगा जिस दिन गुरुजी झांसी से दिल्ली पधारेंगे और मैं अपनी व्यथा कह पाऊँगा। प्रतीक्षा की अमूल्य घड़ियां बीती और मैं और गुप्ता जी के साथ पतित पावन के चरणों की तरफ बढ़ चला।

मार्ग में मैंने गुप्ताजी से पूछा कि गुरुजी कैसे रंग का चादर धारण करते हैं? बोला सफेद। मैंने पुनः पूछा क्रीम–पीली? पीली नहीं। गुप्ता जी उत्सुकतावश हंसते रहे। दिल्ली आश्रम पहुँच कर कृत–कृत हो गया। वही गुरुजी, वही पीली–पीली चादर। जी भरकर दर्शन किए। गुरुजी की मन्द–मन्द मुस्कान से मैं गुरुजी का ही हो गया। मुझे मुकदमें आदि अन्य बातो की कोई सुध न रही। निहाल हो गया। तब से मुझ अधम पर गुरुजी अनेक कृपाऐं कर रहे हैं। जिनमें से एक घटना का वर्णन गुरु चरणों में करता हूँ।

जब गुरुजी पट्टी बांधन आए–बात १९९६ सर्दियों की है। मैं S. Tax की तारीख भुगतने स्थानीय कार्यालय साईकिल द्वारा जा रहा था। कार्यालय के सामने पहुँच कर बांया पैर नीचे रखकर, सड़क पार करने हेतु यातायात निरीक्षण करके ज्यों ही सड़क पार करना चाहा त्यों ही दो पहिया स्कूटर ने तीव्रतम गति से मुझे टक्कर दे मारी। मैं धड़ाम से गिर गया। स्कूटर और चालक तथा पीछे बैठा सवार खाली सिलैन्डर सहित धमाके के साथ गिर गए।

भयंकर आवाज सुनकर दूकानदार बाहर निकल आए। राहगीर रुक गए। किसी ने मुझे उठाया। तब मुझे कुछ–कुछ होश आया। शरीर में बेचेनी थी। हाथ से रक्त बह रहा था। इस समय मैं भीड़ से घिरा हुआ था। मैंने उदास स्वर में डाक्टर के पास चलने को कहा।

तभी भीड़ में से एक पूज्य वृद्ध बोले, "रूई लगा लो–खून रुक जाएगा।" मैंने कहा,

कहाँ है रूई? उसने रूई देते हुए कहा, 'ये लो।' फिर उक्त सज्जन बोले,'पट्टी बांध दो।' कोई बोला, इथे पट्टी कहाँ है? जेब से पट्टी देते पूज्यवर बोले, 'ये लो पट्टी' रूई लपेटने वाला छोकरा बोला, हूं ये कोई पट्टी है, ये तो पट्टा है। सज्जन छोटी पट्टी देते हुए बोले, 'ये ले भई छोटी ले ले।' लड़के ने पट्टी लपेट कर शेष पट्टी काटने हेतु साथ वाली दूकान में आवाज लगाई, ओ ये गुलशन कैंची देईं। तब वृद्ध बोले, 'ये ले कैंची। लड़का बोला, ऊँह, यो तो कैंची देईं। तब वृद्ध बोले, 'ये ले कैंची।' लड़का बोला, ऊँह, यो तो कैंचा है, ओह छोटी हुन्दी है। तब जेब से छोटी कैंची देते हुए मान्यवर बोले, 'ये ले छोटी ले ले।'

पट्टी के बाद खून बहना रुक गया था। मैं भी संभल गया था। परन्तु इतना ही बोल पाया कि अजी आप ये सब सामान किस लिए साथ रखते हो। बोले, 'भई, यों ही जरूरत पड़ जाती है'। अब भीड़ छटने लगी, मैं भी S. Tax वालों को, जो वहीं आ गए थे, तारीख करने की कह कर सीधा घर पहुँचा। घर पर उपस्थित अपनी छोटी लड़की रेखा से दूध की कह कर बैड पर लेट गया। सामने गुरु जी के स्वरूप पर दृष्टी कर मैं धन्यवाद करने लगा कि बहुत बचाव हो गया...।

तभी विचार कोंधा, ओहो! गुरुजी आप, स्वयं.... मैं मूर्ख जान नहीं पाया। अब क्या करूँ, कहाँ खोजूं? धिक्कार मुझे, गलती हो गई। क्षमा करना दाता, क्षमा करना....।

इस प्रकार गुरुजी ने अनेक कृपाऐं की हैं। समस्त कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है। दीक्षा लेने से पहले भी गुरुजी ने जो कृपा की है, कोई विश्वास नहीं करेगा। मगर बात सच्ची है।

पूर्व जन्म का बोध—मैं पूर्वांचल (शायद बिहार) के एक गाँव में वैश्य परिवार में था। गाँव का नाम इस समय याद नहीं आ रहा। चार अक्षर का नाम है। गाँव के किनारे पर उत्तर दिशा में एक रजबाहा बहता है। जहाँ हम स्नान, कपड़े धोने हेतु जाया करते। रजबाहा के पूल से दक्षिण में बसे गाँव में सीधा एक गली छोड़ कर दूसरी गली वाला पहला मकान जो कच्चा है, दो गली लगती हैं। मकान के दो गेट हैं। एक बड़े वाले भाग में पीलर के स्थान पर वृत सा काला थम्ब लगा है।

गाँव के पूर्व दिशा में डेढ़ दो मील रजबाहे के साथ-साथ स्कूल है। इस मार्ग में आम के बाग हैं। बाग के पत्ते झड़ कर चलने वाले रास्ते पर गिर जाते हैं जो चलते समय टूटने की आवाज करते हैं। हमें डर लगता था।

परिवार में माँ याद है जो मोटी, गेहूं रंग की थी। मुँह पर चेचक के दाग थे। मुझे बहुत चाहती थी। कुछ पढ़कर मैं गाँव से करीब एक मील पैदल जा कर रेलवे हाल्ट से रेलगाड़ी द्वारा एक शहर में नौकरी करता था। वापसी में गाँव के आदमी स्टेशन से ही मेरा थैला स्वयं ले लेते कहते, बाबू हमीं ले चलों घर पहुँचा देईं। घर भी दो-चार-पांच आदमी इन्तजार में बैठे मिलते। कोई पाती पढ़ाने, कोई लिखाने। मेरी माँ कहती थी पहले जल-पान ना करी।

युवावस्था में ही मैं मामूली बीमार हो कर चल बसा। मैं सफेद कमीज, ग्रे पैन्ट तब पतलून कहते थे, काले जूते और सफेद जुराब पहनता था। मेरी शादी नहीं हुई थी। भाई बहिन तो थे मगर चेहरा और संख्या याद नहीं। पिता बचपन में चले गए थे। साफ सुथरा सभ्य परिवार था।

पूर्व जन्म के मामा के घर अब गया—सन् १९८३ में दो साथियों के साथ किसी व्यापारिक कार्य से मुझे जमशेदपुर जाना पड़ा। वहाँ से लौटते समय स्टेशन पहुँचे। टिकट खरीदते समय अचानक प्रोग्राम बन गया कि श्री जगन्नाथ पुरी की गाड़ी तैयार है इसी में बैठ लें। प्रातः श्री जगन्नाथपुरी पहुँच गए। सारा दिन दर्शन किए। सायं साथियों ने अपने रिश्तेदार के यहाँ 'खुदार रोड' जो आजकल जंगशन है, ठहरने का निर्णय लिया। लगभग ४५ किलो मीटर की दूरी तय करके हम स्टेशन से पैदल चल रहे थे कि मैं लहमें मे आगे–आगे चलने लगा और कुछ दूर गए तो एक मकान के सामने पैर स्वतः रुक गए।

संयोग से यही साथियों के रिश्तेदार का मकान था। हम कमरे में सोफे पर इस तरह बैठे कि मेरा मुख गली की तरफ और साथियों का दूसरी तरफ था। मकान वाले लाला जी अन्दर से पानी लेने गये। एक साथी बोला, इस मकान के पिछवाड़े ढलान लगता है। मैं बोला काफी ढलान है, पीछे गली है, वहाँ गीला रहता है अन्धेरा भी है।

तब तक लाला जी पानी ले आए। बोले क्या कह रहे हो? मैं बोला, यहाँ रेलवे गोदाम होता था। गोदाम के पास बहुत रेत पड़ा रहता था। एक पानी की टूटी रेलवे की लगी थी। बहुत झौपड़ी बनी थी। झौपड़ी वाले रेत की रुकावट से पानी रोकते थे कि झौपडी में ना आए। कोई रेल के बान्ध को तोड़ देता तो काफी झगड़ा–लड़ाई होता था। हम रेत में कांच की गोली से पिट्ठू खेलते थे...।

सब आश्चर्य चकित थे। लाला ने पूछा आपको क्या मालूम ये तो बहुत पुरानी बातें हैं। आजकल सब अदल–बदल हो गया है। मैंने पूर्व जन्म का आभास जताया। लाला बोला हम तो इस मकान में किराएदार हैं। असली मालिक तो थोड़ी दूर कोठी में रहते हैं। कहो तो बुला दूं। मैंने बुलाने से इन्कार कर दिया। वो स्थान/मकान मैं अब भी पहचान सकता हूँ। यह सब गुरु कृपा ही है।

चलत बिन पग, सुनत बिनू काना

गुरुचन्द्रमोहन जी महाराज दीक्षा देने के बाद तो अपनी कृपाएं करते ही हैं। मगर दीक्षा से पहले भी कृपा करते रहते हैं। उस समय शायद ही कोई यथार्थ जान पाता होगा। मैं बालकाल में अपने जन्म स्थान, मकान के बाहर रात को सो रहा था। हुआ यूं कि दो सज्जन मुझे सूक्ष्म रूप से बुला ले गए। वे भी सूक्ष्म शरीर में थे। शीघ्र ही हम वायुमण्डल में तैरने लगे और ऊपर को बढ़ते चले। कुछ समय पश्चात भूमि–पहाड़ से प्रतीत हुए। आगे चलकर दो मार्ग अंकित लगे। वे मुझे दाहिने मार्ग से ले चले। शीघ्र ही भवन बने दिखाई दिए। वहाँ

बरामदा छोड़ कर दो लाईन लगी हुई थी। मुझे छोटी लाइन में खड़ा होने का आभास हुआ। वहाँ शान्तमयी वातावरण था। न बोलना, न हलचल, न इशारा। सभी स्वतः ही भाव समझ लेते थे। वो दोनों अन्दर कमरे में चले गए। मैंने झांक कर कमरे में देखा तो एक महाराज दाढ़ी वाले, मोटे से तख्त पर विराजे मोटी–मोटी बही रजिस्टर के पन्ने उलट रहे थे। तभी एक आदमी कमरे से बाहर आया। उसने मुझे वापिसी का संकेत किया। शीघ्र मैं लौटने लगा। मुझे नहीं पता वह आदमी मेरे पीछे कितनी दूर तक आया।

मैं धड़ाम से चारपाई पर गिरा। गिरने से चारपाई में आवाज निकली और उस आवाज तथा हलचल से नींद टूट गई।

गुरुदेव बनाम धर्मराज– जब मैं सुभाष गुप्ता के साथ सर्वप्रथम दिल्ली गया, गुरुजी के स्थूल रूप से दर्शन किए तो मैं यह सोचता रह गया कि बचपन में देखे स्वप्न के बाबा यही थे। जो धर्मराज बने झांक कर देखे थे। आप विश्वास करें या न करें। घटना एक दम सच्ची है।

* * *

शोक संवेदना

- श्री गुरुदेव के कृपापात्र स्व० रमेश चन्द्र शर्मा के सुपुत्र श्री धारेन्द्र शर्मा का लम्बी बीमारी के बाद गत मार्च माह के प्रथम सप्ताह में देहान्त हो गया। पश्चिम विहार, दिल्ली निवासी छत्तीस वर्षीय श्री शर्मा सद्हृदय और श्री गुरुदेव के अनन्य भक्त थे।
- वाराणसी निवासी श्री केशवदेव उपाध्याय के लघु भ्राता श्री कृपाशंकर उपाध्याय का गत् ४ मार्च २००५ को देहान्त हो गया। वे लगभग ५० वर्ष के थे। हृदयगति रुक जाने के कारण उनका अनायास निधन हुआ।

'सिद्धयोग' परिवार इस कठिन परिस्थिति में दिवंगत आत्माओं के परिवारों के साथ है और श्री प्रभुजी से परलोकवासियों को अपनी अभय गोद में स्थान व शोकसंतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता है।

–संपादक

रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी

सिद्ध पुरुष की निर्विकारता

जब नारियल के पेड़ की टहनी झड़ जाती है तो उसकी जगह सिर्फ उसका निशान रह जाता है, जिससे पता चलता है कि इस स्थान पर किसी समय एक टहनी थी। इसी प्रकार जिसे ईश्वर लाभ हो जाता है उसमें अहंकार का केवल चिन्ह भर रह जाता है, काम–क्रोधादि का केवल आकार मात्र रह जाता है। उसकी अवस्था बालक की सी हो जाती है। बालक का सत्त्व, रज, तम में से किसी भी गुण से लगाव नहीं होता। बालक के मन में किसी वस्तु के प्रति खिंचाव पैदा होने में जितना समय लगता है, उस वस्तु को छोड़ देने में भी उसे उतना ही समय लगता है। तुम चाहे तो उससे एक पाँच रुपए कीमत की धोती अधेली की गुड़िया दे फुसलाकर ले सकते हो–भले ही पहले वह बड़े जोर के साथ कहे, "नहीं मैं नहीं दूँगा, मेरे बाबूजी ने मोल ले दी है।' फिर, बालक के लिए सब समान है– ये बड़े हैं, वह छोटा है, यह ज्ञान उसे नहीं है। इसीलिए उसे जाति–पाँति का विचार नहीं है। माँ ने कह दिया, "यह तेरा दादा है।", फिर चाहे वह लुहार ही हो, वह उसके साथ बैठकर एक ही थाली में से रोटी खाएगा। बालक को घृणा नहीं, शुचि–अशुचि का ज्ञान नहीं। शौच के बाद हाथ नहीं मटियाता।

मुक्त पुरुष संसार में किस तरह रहते हैं, जानते हो?–पनडुब्बी चिड़िया की तरह; जो पानी में रहती तो है पर उसके बदन पर पानी नहीं लगता; अगर कभी थोड़ा–सा लग भी जाए तो एक बार बदन को झाड़ लेने से तुरन्त सब पानी झड़ जाता है।

साँप को पकड़ने जाओ तो तुरन्त काट खाता है, पर कोई अगर उसका मन्त्र जान ले तो कई साँपों को अपने गले में लपेट कर खेल दिखला सकता है। उसी प्रकार, ज्ञान लाभ कर लेने के पश्चात् मनुष्य पर कामिनी–कांचन का परिणाम नहीं होता।

मेढक के बच्चे की जब दुम झड़ जाती है तब वह पानी में भी रह सकता है और जमीन पर भी। अविद्यारूपी दुम के झड़ जाने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है। तब वह सच्चिदानन्द भगवान में भी मग्न रह सकता है और संसार में भी विचरण कर सकता है।

हवा चन्दन की सुगन्ध और विष्ठा की दुर्गन्ध दोनों को लेकर बहती है, परन्तु उनमें से किसी के भी साथ मिल नहीं जाती। इसी प्रकार, मुक्त पुरुष भी संसार में रहते तो हैं, परन्तु वे संसार के साथ मिलकर एक नहीं हो जाते।

लोहा यदि एक बार पारस पत्थर को छूकर सोना बन जाए, तो फिर उसे चाहे मिट्टी के भीतर गाड़ रखो, चाहे कण्डे में फेंक दो, वह सोना ही बना रहेगा, फिर लोहा नहीं बनेगा। जिन्होंने भगवान् का लाभ कर लिया है उनकी अवस्था भी इसी प्रकार होती है। वे चाहे

संसार में रहें चाहे वन में, उन्हें किसी प्रकार का दोष छू नहीं सकता।

दूध को पानी में छोड़ दो तो वह पानी के साथ मिलकर एक हो जाता है, परन्तु यदि उसका मक्खन बना लिया जाए तो फिर वह पानी में नहीं मिलता, तब वह पानी पर तैरने लगता है। इसी तरह, ईश्वरलाभ कर लेने के पश्चात् मनुष्य हजारों संसारात्मक बद्ध जीवों के बीच रहकर भी स्वयं बद्ध नहीं होता।

जिसने जीव, जगत् तथा ब्रह्म इन तीनों के एकत्व की उपलब्धि कर ली है, उसे अच्छे और बुरे का बन्धन बाँध नहीं सकता।

सिद्ध पुरुष अच्छे और बुरे के पार होते हैं

पहाड़ पर चढ़ने के पहले पठार पर, छोटी–छोटी घास और बड़े–बड़े पेड़ देखकर मनुष्य सोचता है, यह घास कितनी छोटी है और पेड़ कितने बड़े हैं।' परन्तु जब वह पहाड़ पर चढ़कर देखता है तो उसे घास और बड़े पेड़ सब एक से दिखाई देते हैं। इसी प्रकार, सांसारिक दृष्टि से देखने पर छोटे–बड़े का कितना भेद दिखाई पड़ता है। कहाँ राजा और कहाँ भिखारी! कहाँ माता–पिता और कहाँ सन्तान! परन्तु ईश्वर की ओर दृष्टि पड़ते ही सब समान हो जाते हैं। तब उन्हीं की सेवा परमकर्तव्य बन बैठती है।

रानी रासमणि के कालीमन्दिर में एक बार एक पागल–सा साधु आया था। एक दिन उसे कुछ खाने नहीं मिला, पर उसने किसी से कुछ नहीं माँगा। एक जगह एक कुत्ते को जूठी पत्तलों में से जूठन खाते देख वह उसका कान पकड़कर बोला, 'तुम खाते हो, हमको नहीं देते?' और उसी के साथ खाने लग गया। फिर काली–माता के मन्दिर में जाकर उसने ऐसी अपूर्व स्तवस्तुति की कि मन्दिर मानो कम्पित हो उठा। बाद में जब वह जाने लगा तब श्रीरामकृष्ण ने अपने भानजे हृदय को उसके साथ जाकर देखने को कहा हृदय के उसके पीछे–पीछे थोड़ी दूर जाते ही उस साधु ने पलटकर कहा, तू क्यों आ रहा है?' हृदय ने कहा, 'मैं कुछ उपदेश चाहता हूँ'। तब साधु ने कहा, 'जिस समय तुझे यह नाले का पानी और वह गंगा का पानी दोनों एक प्रतीत होंगे; जिस समय यह शहनाई की आवाज और कोलाहल की आवाज एक ही मालूम होंगी, उस समय तुझे ठीक–ठीक ज्ञानलाभ होगा।' श्री रामकृष्ण कहा करते, "उस व्यक्ति की ज्ञानोन्माद–अवस्था थी। सिद्ध पुरुष संसार में बालकवत्, पिशाचवत् या उन्मत्तवत् विचरण किया करते हैं।"

परमहंस की अवस्था बालक जैसी होती है। पाँच वर्ष के बालक की तरह स्त्री और पुरुष में भेद नहीं मालूम होता। परन्तु फिर भी संसार के सामने आदर्श रखने के लिए उसे कामिनी से सावधानी बरतनी चाहिए।

एक बार जनक राजा की सभा में एक संन्यासिनी आई। उसे देख जनक ने सर नीचा कर लिया, आँखें झुका लीं। यह देख संन्यासिनी बोली, "हे जनक! तुम्हें अब भी स्त्रियों को देख इतना भय लगता है।' पूर्णज्ञान हो जाने पर पाँच साल के बच्चे का सा स्वभाव हो जाता

है– तब 'यह स्त्री है और यह पुरुष' इस इस प्रकार भेदबुद्धि नहीं रहती।

यद्यपि संसार में रहने वाले ज्ञानी में कुछ दाग लग सकता है, परन्तु उस दाग के कारण कोई हानि नहीं होती। चन्द्रमा में कालिमा है तो सही, पर उससे उसके प्रकाश में कोई बाधा नहीं आती।

लोहे की तलवार को पारस पत्थर का स्पर्श करवाने से वह सोने की बन जाती है। उसका आकार पहले जैसा ही रह जाता है, परन्तु उससे फिर हिंसा के कार्य नहीं हो सकते। इसी प्रकार, ईश्वर के पादपद्मों का स्पर्श कर लेने पर यद्यपि मनुष्य के आकार में कोई बदल नहीं होती, तथापि उसके द्वारा फिर किसी प्रकार का दोषयुक्त काम नहीं हो सकता।

अद्वैतज्ञान को आँचल में बाँधकर जो चाहो करो तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा।

एक बार भीड़ में से चलते हुए एक साधु का पैर एक दुष्ट आदमी को लग गया। इस पर उस आदमी ने मारे क्रोध के आगबबूला हो उस साधु को इतनी बुरी तरह पीटा कि साधु बेहोश होकर गिर पड़ा। शिष्यों के काफी देर तक सेवा–सुश्रूषा करने के बाद जब उसमें कुछ होश आया तब एक शिष्य ने पूछा,"महाराज, बताइए तो भला कौन आपकी सेवा कर रहा है?' साधु ने कहा, 'जिसने मुझे मारा था।' यथार्थ साधु को शत्रु और मित्र में भेद नहीं दिखाई देता।

सिद्ध पुरुष तथा कर्म

जिसे भगवान् के दर्शन हुए हैं वह कभी पागल की तरह तो कभी पिशाच की तरह घूमता है–उसे शुचि–अशुचि का भेदभाव नहीं रहता। कभी तो वह जड़ की तरह हो जाता है– अन्दर–बाहर ईश्वर के दर्शन कर निर्वाक, निःस्तब्ध बन जाता है। कभी वह बालक जैसा रहता है– किसी चीज पर लगाव नहीं, बालक की तरह धोती को बगल में दबाए घूमता है। इस अवस्था में वह कभी बालभाव में रहता है, कभी किशोरभाव में हँसी–दिल्लीगी करता है, तो कभी युवकभाव में रहता है। किन्तु जब वह लोकहित के लिए कर्म करता है, लोकशिक्षा देता है, उस समय उसमें सिंह के समान बल आ जाता है।

समाधि होने पर सब कर्मों का त्याग हो जाता है। पूजा–जप आदि कर्म, वैषयिक कर्म–सबका त्याग हो जाता है। शुरू–शुरू में कर्म की बड़ी चहल–पहल रहती है। पर मनुष्य ईश्वर की ओर जितना अधिक अग्रसर होता है उतना ही कर्म का आडम्बर कम होता जाता है। यहाँ तक कि धीरे–धीरे उनका नाम–गुणगान तक बन्द हो जाता है। (साधारण: ब्राह्मसमाज के सदस्य शिवनाथ शास्त्री के प्रति–) जब तक तुम सभी में नहीं आते तब तक तुम्हारे नाम, गुण आदि की काफी चर्चा होती रहती है; ज्योंही तुम आ पहुँचते हो त्योंही वे सब बातें बन्द हो जाती हैं। तब तुम्हारे दर्शन में ही आनन्द मिलता है। तब लोग कहने लगते हैं, 'ये शिवनाथबाबू आ रहे हैं।' तुम्हारे बारे में अन्य सब बातें बन्द हो जाती हैं।

बहू गृहस्थी के तरह–तरह के कामों में सदा उलझी रहती है। पर जब उसके गर्भ में

सन्तान आ जाती है तो उसके सारे काम छूट जाते हैं। बच्चा पैदा हो जाने के बाद तो उसे दूसरे काम–काज अच्छे ही नहीं लगते, तब वह दिन भर अपने बच्चे की ही देखभाल करती रहती है। उसे चूमती–पुचकारती हुई आनन्द में डूबी रहती है। मनुष्य अज्ञान–अवस्था में नाना प्रकार के कर्म करता है, किन्तु ईश्वर के दर्शन पा जाने पर फिर उसे वे कर्म अच्छे नहीं लगते, तब उसे ईश्वर की सेवा छोड़ दूसरे काम करने में रूचि नहीं आती, वह ईश्वर को क्षण भर के लिए भी छोड़ना नहीं चाहता।

यदि तुम्हें ईश्वर का लाभ हो जाए तो फिर संसार असार नहीं प्रतीत होगा। जिसने उन्हें प्राप्त कर लिया है वह देखता है कि वे ही वह जीव–जगत् बने हैं। वह जब बच्चों को खिलाता है तो समझता है कि वह गोपाल को खिला रहा है; पिता–माता को ईश्वर–ईश्वरी की दृष्टि से देखता और उनकी सेवा करता है।

❊ ❊ ❊

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषांजहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथा रसमहो नितरां पिब त्वम्।।

(श्रीमद्भागवत मा. ४/८०)

भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है। निरन्तर उसी का आश्रय लिये रहे। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मो से मुख मोड़ लें। सदा साधुओं की सेवा करें। भोगों की लालसा को पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरों के गुण-दोषों का विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान की कथाओं के रस का ही पान करें।

श्री प्रभुजी का अवतरण

रवीन्द्र स्वामी

प्रभु जी ने नवमी के दिन ही क्यों अवतरण लिया ? कितना पावन समय था जो कि प्रभु जी ने इस कलिकाल में पावन चरण रखकर समस्त संसार को प्रभावित किया। त्रेता में श्री राम के रूप में अवतरण लिया, द्वापर में श्रीकृष्ण के रूप में ! तथा समस्त मानव जाति को प्रेम का संदेश दिया। कितना पावन समय था कि श्रीराम रूप का दर्शन हुआ। राम का प्राकट्य हुआ। श्रीराम का जन्म मध्यम १२ बजे तथा श्रीकृष्ण का जन्म मध्यम रात्री के १२ बजे हुआ, कितना पावन समय था श्रीराम–श्रीकृष्ण का जन्म में दोनों समय ही समान था। भगवान राम का जन्म नवमी तिथि को हुआ। कितना सुन्दर पावन समय भगवान श्रीराम ने चयन किया। ऐसा ही महाप्रभु रामलाल जी महाराज ने चयन किया। हमारी प्रकृति भी सजधज कर परमात्मा के प्राकट्य की प्रतीक्षा कर रही थी। बसंत ऋतु का आगमन हुआ, पवन शीतल थी, आसमान साफ था, न अधिक ठंड थी न अधिक गर्मी थी, दिशाएँ शून्य थी, आकाश स्वच्छ था, नदियाँ सही मार्ग से बह रही थी। पर्वतों से मणियाँ निकल रही थी। किसी ने पूछ लिया पर्वतों से तुमसे मणियाँ क्यों निकल रही हैं तो पर्वतों ने कहा मुझे आज मत पूछो, आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि आज श्रीराम का प्राकट्य होने वाला है। आज सभी जीव–जन्तु में राम पैदा हो जायेंगे। किसी ने पूछा नदियों से कि आज तुम क्यों इतना प्रसन्न हो अमृत क्यों बहाये जा रही हो। नदियों ने कहा कि आज हम इसलिए प्रसन्न हैं कि आज राम का आगमन होने जा रहा है। तब उसने कहा कि वहाँ दर्शन नहीं कर लेती सागर में जहाँ नित्य भगवान अपने योग्य समाज में रहते हैं। नदियों ने कहा कि ससुराल में पर्दा करना पड़ता है ठीक से दर्शन नहीं कर पाती। आज राम का अवतरण होना है। आज हमें इसलिए प्रसन्नता है। नदियाँ कहने लगी ऐसा जीवन फिर मिले या न मिले बाप–बेटी का दुर्भाग्य है कि पर्वतों की पुत्री हैं नदियाँ। इसी प्रकार किसी ने पूछ लिया वायुदेव से पवन आज आप इतने प्रसन्न क्यों हो उन्होंने उत्तर दिया कि आज हमारी प्रसन्नता का कारण मत पूछो। आज जगत पिता श्रीराम आने वाले हैं। जब श्रीराम जी और रावण का युद्ध होगा तो मेरा पुत्र हनुमान उनकी सेवा में जाने वाला है। पवन के खुशी की सीमा न रही। मेरा पुत्र हनुमान उनकी सेवा में जाएगा तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। इसी संदर्भ में तुलसीदास महाराज जी ने लिखा है–

नवमी तिथि मधुमास पुनीता।
शुक्ल पक्ष अभिजित हरि पिता।।

श्रीराम के रूप में अवतरण हुये श्रीराम तथा प्रभु जी के रूप में अवतरित हुऐ महाप्रभु जी महाराज जिन्होंने कलिकाल में इस पावन भूमि सवाई धाम की तपो भूमि पर तपस्या के

प्रभाव से मानव मात्र को सुख शान्ति सदभाव गुरु दीक्षा से जनमानस को कल्याण की भावना से ओत–प्रोत कर जीवन में गुरु मंत्र का सहाय लेकर जीवन ऊँचा उठाया है और कहा जाता है गुरु पुत्र के शिष्य के सभी कार्य सिद्ध होते हैं। इसमें संदेह नहीं है।

जिसके मुख में गुरु मंत्र है उसके सभी कार्य सिद्ध होते है दूसरों के नहीं। दीक्षा के कारण शिष्य के सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। श्री सिद्ध गुफा की पावन रज को मस्तक धारण कर आज भी हजारों लोग लाभान्वित हो रहे हैं। तथा हजारों लाखों की संख्या में प्रभुजी के पावन मुग्ध रूप को देखकर ध्यानस्थ हो जाते है तथा मन निछावर होने लगता है। बहुत पुण्य बढ़ रहा है तथा चमत्कारिक कार्य सिद्ध हो रहे है और लोग दर्शन करके अपने को भाग्यशाली समझ रहे हैं। तथा दिव्य आरती कर मन और ह्रदय में स्फूर्ति होने लगती है तथा आधि–व्याधि से दूर तथा प्रभुजी की शक्ति का समावेश हो रहा है। और गुरु धाम पर पहुँचते ही पुण्यों की वृद्धि होने लगती है। हजारों लाखों लोगों की श्रद्धा विश्वास के प्रतीक प्रभुजी तथा श्रेष्ठ पूज्य श्री योगीराज चन्द्रमोहन जी महाराज के बताये निर्देशों पर विश्व के कोने–कोने से लोग आकर इस पावन धाम को अपने ह्रदय में रखकर नतमस्तक होकर अपने को कृतार्थ समझते हैं। यहाँ के साधु माहात्माओं तथा ब्रह्मचारियों में शान्ति सद्भाव और धार्मिकता से जनमानस को व गुरुजी के बताये मार्ग पर मंत्र दीक्षा, आसन प्राणायाम तथा जीवन तत्व साधन ने साधक को पूर्ण लाभान्वित किया। जिन पर महाप्रभु रामलाल जी महाराज तथा गुरुदेव की असीम कृपा बरस रही है, ऐसे पावन पर्व रामनवमी को बार–बार श्रद्धा भक्ति विश्वास से नतमस्तक होकर प्रणाम करते हैं।

किसी ने ठीक ही कहा है कि हिन्दुस्तान में प्रतिवर्ष रामनवमी आती है। श्रीराम जी का सुमिरन किया जाता है। नवमी राम की से आज हम धनी हैं और इन्हीं अवतारों के कारण समृद्धशाली हैं। इन्हीं अवतारों के कारण यदि आज हमारे देश में रामनवमी न होती, दुर्गा पूजा न होती, गणेश पूजा न होती, जन्माष्टमी न होती तथा शिवरात्रि न होती तो हमारा देश क्या होता ?

इन्हीं अवतारों के कारण हमारा देश गौरवान्वित है। आज विश्व गुरु के रूप में जाना जाता है। भारत की विश्व में गरिमा है। हम इस देश की मातृ भूमि की तथा सन्त महात्मा तथा योगियों की पावन रज को मस्तक पर रखते हैं। तथा भगवान एवं गुरु के पावन नाम को जपते हैं। और साधक लोग साधना में लगे रहते हैं। प्रभुजी के पावन धाम तथा प्रभुजी के रूप को देख कर बार–बार प्रणाम करते हैं।

जय गुरुदेव !

* * *

"संस्कार शक्ति व साधना शक्ति"

कु० रुक्मिणी वर्मा, सहारनपुर

पूर्व प्रकरणों में क्रमशः गर्भ के संस्कार, माता–पिता व पूर्वजों के संस्कार, विद्या के संस्कार, अन्न–जल के संस्कार, भूमि के संस्कार आदि का वर्णन करते हुए मित्र मंडली के संस्कारों का वर्णन किया गया था। जिसमें बताया गया था कि यह रिश्ता अति पुनीत होता है और साधारण व्यवहार करने वाला हो अथवा विशेष उपाधि से युक्त व्यक्ति हो अथवा साधक हो, इस रिश्ते का चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ता है। परन्तु मित्रता लाखों में, करोड़ों में किसी एक की ही टिक पाती है, अधिकाँश मित्रता समय की परीक्षानुसार भग्न हो जाती है, किसी का कोई स्वार्थ अड़ जाता है, किसी के पास मित्र के लिए आपत्तिकाल में समय ही नहीं निकल पाता, किसी का व्यापार आड़े आ जाता है, किसी का रिश्ता आड़े आ जाता है, किसी का राज, किसी की पदोन्नति, किसी की राजनीति, किसी की चतुराई व अन्य पारिवारिक नीति बीच में आ जाती है। हालात कुछ भी हों, विवेक दोनों आ[illegible] से गिरने पर ही मित्रता का संतुलन बिगड़ता है और सब रिश्ते प्राकृतिक अर्थात् रक्त सम्बन्धी होते हैं जैसे माँ, पिता, पुत्र, पुत्री तथा फिर इनसे चक्रवात की तरह उलझे रिश्ते नाना, दादा, बुआ, मौसी, नन्द, भाभी, देवरानी, जेठानी आदि–आदि। और सब रिश्ते इसलिये टिकाऊ होते हैं कि सांसारिक रीति–रिवाज के लिये निभाने होते है। दिल टूटा हुआ हो तो भी सामाजिक व पारिवारिक मर्यादाओं के लिए न चाहते हुए उठना–बैठना पड़ता है, समय बीता, बात बीती, बीती जल्दी बिसर भी जाती है।

कहावत प्रसिद्ध है, कुल को व जल को मिलते देर नहीं लगती। अतः किसी न किसी रूप में मोह बाँधे रखता है। परन्तु मित्रता का रिश्ता काँच का सा होता है, दरार पड़ी और एकता टूटी इसी रिश्ते से दिल की बात होती है और यही रिश्ता दिल में पत्थर की तरह चोट करता है। अतः मित्रता को निभाना हँसी खेल नहीं है। चंचलमन व स्वार्थ मन वाले इस रिश्ते की कीमत नहीं समझते। धीर–गम्भीर मन वाले अधिक समय तक चला लेते हैं। नहीं तो एक मित्र टूटा, दूसरा बनाया, दूसरा टूटा, तीसरा चौथा बनाया। साधक की साधना के परिप्रेक्ष्य के विषय में बस इतना ही कहा जाना चाहिए कि न किसी से मित्रता करे न शत्रुता। दोनों ही स्थिति में राग व द्वेष की तरंगे चित्त में घूमकर साधना को भ्रष्ट करेंगी। अतः ना काहू से दोस्ती न काहू से बैर। संसार एक रंगमंच है, यहाँ हर कोई संस्कार भुगतान के लिये माँ–बाप, बेटा–बेटी, साला, जीजा, बुआ, चाचा, ताऊ, नाना, सास–बहू आदि का रोल अदा करने के लिये आया। मन के बनाये खेल हैं, भ्रम में डूबा है इन्सान, यथार्थ में अपने समझता है सबको। ठोकरें खाता है, जूते खाता है, फिर भी अक्ल नहीं आती, इसका रिश्तों से ही पेट नहीं भरता। दो–चार रिश्ते टूटे तो कृत्रिम रिश्ते बना लिये। रूपान्तर करता रहता

है मोह का। दाद जैसा चर्म रोग है रिश्ते बनाना व बिगाड़ना। दाद को हाथ से खुजलाओ तो हाथ पर लगे, जहाँ–जहाँ दाद का स्राव लगे, वहाँ–वहाँ इस छूत रोग का पसारा। अतः व्यर्थ का ही मन इस रोग को पाले हुए है।

घरवालों से नहीं बनती तो उस रिश्ते की पूर्ति दूसरों से वही रिश्ता बनाकर करता है। क्या मिलता है? कुछ नहीं, वही छोटी–छोटी बातों पर तू–तू, मैं–मैं। सब धोखे का विस्तार है। राजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी मिश्रित धारायें कहाँ नहीं हैं भला? क्षमा करके फिर पूर्ववत् भाव लाना हर किसी का स्वभाव नहीं है। अतः हे मन सावधान! ईश्वर ही तेरा सच्चा माता–पिता, बन्धु व मित्र है। धर्म पर मन मिटने वालों में तो बिना रिश्ते भी व्यवहार टिकाऊ हो जायेगा, नहीं तो सब स्वार्थ का जाल है, सब लोभ–मोह व क्रोध से ग्रस्त हैं। कर्ण ने दुर्योधन से मित्रता निभाई तो इसलिये नही कि वह उससे प्यार करता था। कर्ण जानता था कि दुर्योधन कपटी है, लोभी है। फिर भी इसलिये साथ नहीं छोड़ा कि भरी सभा में वचन दे दिया था। अतः वचन की सिद्धता का धर्म निभाने के लिये रणक्षेत्र में धराशायी हुआ। कर्ण की मित्रता भी अद्भुत थी। विभीषण–राम, सुग्रीव–राम, सुदामा–श्रीकृष्ण इनकी मित्रता थी तो उसका आधार भक्ति का भाव था। परन्तु कर्ण तो दुर्योधन के विपरीत था। कर्ण विद्या का धनी, शस्त्र विद्या का धनी, सत्यवक्ता, दया, दानशील व संयमी था। भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं कहा कि अर्जुन कर्ण हर प्रकार से तुमसे बढ़कर है, तुम इसे मेरे साथ होकर भी नहीं मार सकते। अतः धोखे से मार डालो तो मरेगा। शरशैय्या पर लेटे भीष्म पितामह ने सभी पहरेदारों को हटाकर कर्ण को अपनी छाती से चिपटाकर बताया कि मेरे बेटे! तुम सूत नहीं हो, सूर्य के बेटे हो, कुन्तीनन्दन हो, पाँचों पाँडवों के ज्येष्ठ भ्राता हो, अतः दुर्योधन की तरफ से मत लड़ो, युद्ध मत करो। परन्तु कर्ण ने धर्म नहीं छोड़ा और यही उत्तर दिया कि पितामह! दुर्योधन ने मेरा हाथ उस समय थामा जब मुझे गुरुदर से भी निष्कासित किया जा चुका था। दो–दो शाप मुझे मेरे गुरुदेव से मिले, माँ ने जन्म देते ही जल में प्रवाहित कर दिया, पिता कौन है? पता नहीं था, ना कोई दर था, न घर, न जाति का पता न कुल का।

ऐसे भयंकर समय में जब राजाद्रुपद मेरा भरी सभा में अपमान कर रहे थे, दास दरबारी मुझ पर हँस रहे थे, पृथ्वी के सभी सम्राट मुझ पर व्यंग बाण कस रहे थे, तब दुर्योधन ने भरी सभी में अपना अँगूठा चीरकर रक्त से मेरे भाल का राजतिलक किया, मुझे अंगदेश का राजा बनाया, मित्र कहकर मेरा हाथ थामा। अब उस दुर्योधन का साथ निभाने का समय है तो पीछे क्यूँ हटूँ। मैं जानता हूँ अर्जुन मेरा सगा भाई है, श्रीकृष्ण मेरे मामा का लड़का है, परन्तु वचन भंग करके मैं सत्य का मार्ग छोड़कर अधर्म नहीं करूँगा। उस परमवीर ने भाई के हाथों मरके वीरगति पायी, वह केवल स्वर्ग का अधिकारी होता परन्तु भगवान श्रीकृष्ण उस रणबाँकुरे को अपनी छाती से लिपटाने, उसे सायुज्य मुक्ति देने स्वयं विप्र वेश धारण करके समरांगण में उसके पास गये व स्वर्णदान की याचना की। स्वर्णदान करते हुए उसका

अंग–अंग छिल गया। कर्ण रो पड़े, माधव इतनी कठोर परीक्षा लेकर अब छाती से लगाकर मुझे गोद में बैठा रहे हो। प्रभु ने कहा, मेरे बच्चो! मैं संसार में तुम्हारा यश फैलाना चाहता था, मैंने ही तुम्हें धोखे से मरवाया है। धर्म की रक्षा करना व स्थापना करना मेरा दायित्व है, तुम्हारे रहते दुर्योधन सुरक्षित था, अतः तुम्हारा मरना जरूरी था, मेरी मजबूरी थी तुम्हे धोखे से मरवाना। फिर भी मैं तुम्हें जगत में प्रसिद्ध करूँगा कि कर्ण इतना धर्मपरायण, महापराक्रमी व महादानी था, मैं तुम्हें वह मुक्ति देता हूँ, जो बड़े घनघोर तप से भी नहीं मिलती, आज से तुम दानी व महारथी कर्ण के नाम से विश्वविख्यात होओगे।

कर्ण प्रभु के प्रेम में सराबोर उन्हीं की गोद में हमेशा के लिए सो गये। ये थी धर्मपरायण मित्रता। कर्ण अन्दर से दुर्योधन को नहीं चाहता था, उसकी हर चाल से नफरत करता था परन्तु धर्म की खातिर (वचन भंग न हो) अन्त समय तक साथ निभा गया। ईश्वर सबको देखता है, अतः स्वयं अन्तिम दर्शन देने व प्यार लुटाने पहुँच गये, यश भी दिया, मुक्ति भी। ऐसे उदाहरण अब पृथ्वी पर कहाँ? दोहरे नकाब पहनती है दुनिया, सामने कुछ, पीठ पीछे कुछ। जो सामने सत्य बात कह दे तो बेचारा और तंग गली करवाता है अपनी राह की। सचमुच वैराग्य होता है स्वाँग भरी इस व्यावहारिकता से। दुनिया के तमाशे देखकर बड़ी हैरानी होती है। नख से शिख तक भोग में डूबे हुए व्यक्ति त्याग व ज्ञान का पाठ पढ़ाते हैं? समय–समय की बात है, ज्ञानी को चुप रहना पड़ता है। अज्ञानी आधा–अधूरा तर्क लेकर शिक्षार्थी की तरह बोलते हैं। कवि बिहारी जी कितना सटीक लिखते हैं–

मरतु प्यास पिंजरा परयौ, सुआ समैं कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु, बायसु बलि के बेर।।

अर्थात् समय–समय का फेर है, वह तोता जो मुख से राम–नाम रटता है, उसे पिंजरे में लोग कैद कर लेते हैं और दाने–चुग्गे के लिये उसे तरसना पड़ता है। जो मीठे फलों पर चोंच मारता था, हरियाली के झुण्ड में निवास करता था, आज लोहे की शलाकाओं में कैद पड़ा है और वे कौए जिनकी भाषा में रस नहीं, सिर्फ शोर करके सिर दर्द पैदा करते हैं, माँस नोंच–नोंचकर खाते हैं, श्राद्ध के दिनों में लोग आज उन्हें हलवा–पूरी–पकवान बुला–बुलाकर खिला रहे हैं। अजीब समय का फेर है। कितना कटु सत्य लिखते हैं हमारे ऋषि, सन्त व कवि। कभी किसी की गम्भीर परिस्थिति का उपहास नहीं उड़ाना चाहिए न नाजायज फायदा उठाना चाहिए। जितनी सहायता हो सके करो, न हो सके तो व्यंगबाण न कसो, न भयभीत करो, न उत्साह का पतन करो, न सफलता–असफलता का उलाहना दो। विपत्ति किस पर नहीं आ सकती? क्या सफलता केवल स्वयं के ऊपर निर्भर है? भीष्मपितामह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–"दूषित वायुमण्डल व दूषित मनोवृति वाले लोगों का प्रभाव बड़े ऊँचे पुरुषों पर भी पड़ता है।" अतः किसी के प्रयासों की सफलता–असफलता का उपहास उड़ाकर उलाहना मत दो। प्रारब्ध ईश्वर के हाथ में है, व्यक्ति कर्म का पुजारी है–

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पांसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ।

व्यक्ति पासे उलट–पलट कर फेंक सकता है, दांव में क्या है? यह उसके वश में नहीं। "असहाय की सहायता करो, उसका तिरस्कार व अपमान का भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता है।" *–भीष्म पितामह*

महानपुरुषों पर अधिक संकट आते हैं, उन्हें कुछ ज्यादा ही ईंट पत्थर खाने पड़ते हैं। दुर्दिन में महापुरुषों को भी छोटे कार्य करने पड़ सकते हैं–

रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किये घटि काज।
पाँच रूप पाँडव भये, रथवाहक नलराज।।

रहीम दास जी कहते हैं कि दुर्दिनों में बड़ों–बड़ों का होसला पस्त हो जाता है और वे अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये छोटे–छोटे काम करने को विवश हो जाते हैं। वह कुछ भी करने को प्रस्तुत हो जाता है क्योंकि उसकी सर्वप्रथम आवश्यकता अपने को जीवित रखना होती है क्योंकि दुर्दिन पर विजय जीवित रहकर ही हो सकती है। देखो! पाँडवों को, राजा विराट के यहाँ वेश बदलकर छोटे–छोटे कार्य करने पड़े। महारानी द्रोपदी को दासी की तरह चरण दबाने पड़े। राज परिवार से संबद्ध होने के बावजूद महाराज नल को सुचरित्रा पत्नी का त्याग करना पड़ा और राजा ऋतुपर्ण को रथ चलाना पड़ा।

महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवशेष।
सो अर्जुन वैराट घर, रहे नारि के वेष।।

रहीम जी कहते हैं कि विपत्ति में बड़े–बड़े महारथियों की हिम्मत टूट जाती है। ऐसे में उन्हें इस प्रकार के आचरण भी करने पड़ते हैं, जो उनको शोभा नहीं देते, वक्त जो न कराये कम है। खाण्डव वन को जलाकर राख कर देने वाले अर्जुन अत्यंत बलशाली था किन्तु अज्ञातवास में उसका बल अनुपयोगी सिद्ध हुआ और राजा विराट के महल में उसे नारी रूप (बृहन्नला) में रहने को विवश होना पड़ा।

अतः ईश्वर पर आस्था रखकर उसे ही मित्रवत् पुकारो, किसी न किसी दिल में दर्द पैदा कर देगा। ईश्वर उसकी सदैव रक्षा करता है, जिसके साथ सच्चाई होती है। दुनिया गाढ़े दिन की मीत है। उस पत्थर को पूजती है जिसने छैनी हथौड़े की चोट खाकर आकृति (चिन्मयी रूप व शक्ति) पायी। एक बड़ा पत्थर रास्ते में पड़ा था। एक व्यक्ति आता, राह में उसे ठोकर मारकर जाता। किसी दिन उस राह से एक कुशल कारीगर (शिल्पी) गुजरा। देखा, पत्थर अच्छी किस्म का है, तराश कर प्रतिमा बनाई जा सकती है। वह उस पत्थर को लाकर रोज तराशने लगा। छैनी हथौड़े की चोट खा–खाकर पत्थर से चिन्मयी मूर्ति बनी। मन्दिर में मूर्ति स्थापित की गयी। ठोकर मारने वाले व्यक्ति पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़े तो मूर्ति के आगे आकर रो–रोकर दर्द सुनाने लगा। मूर्ति मूक रही, अन्दर–अन्दर हँस रही

थी कि मेरा दिल कट–फिटकर वास्तव में पत्थर का पत्थर ही रहा अब चोट खा–खाकर मैं सचमुच और कठोर हो गया, अब आसानी से नहीं पिघलूंगा। बस! आ, रो और चला जा, तेरे जैसे विपत्ति पड़े पर ही शीश झुकानेवालों के लिये मैंने स्वयं छैन्यों के घाव नहीं सहे। सचमुच मैं तुम जैसों के लिये पाषाण हूँ। मैं पिघलूंगा, जो मुझे सुख में दुख में हर समय निःस्वार्थ मुझसे प्रेम बढ़ाता चला जाता है। उसी के लिये मैं चिन्मयी शक्ति हूँ, जैसे रामकृष्ण परम हंस के लिये। अतः दिन रात ईश प्रेम में गोते लगाते चलो। तम्हारे कर्म तुम्हारे साथी है। अच्छे कर्म होंगे, शान्त रहोगे, बुरे कर्म होंगे अशान्त रहोगे। नाहक सुख–दुख का दोषारोपण दूसरों पर करना। बस पहचान करते चलो वक्त और व्यक्ति की। वक्त ही व्यक्ति को दर्शाता है। कहो किसी से कुछ नहीं, जो गिला शिकवा है, ईश्वर के आगे कह दो।

समर्थ गुरु रामदास जी बिल्कुल काँटे की बात कहते हैं कि जहाँ प्रीति न हो, वहाँ रूठना नहीं चाहिए। रूठ मनाई वहीं चलती है जहाँ स्वार्थ व मोह बहुत प्रगाढ़ हो जैसे पति–पत्नी व सन्तान और माता–पिता। संस्कार चक्र मत बिगाड़ो विवाद फैलाकर। परिस्थिति को समझकर मौन हो जाओ। जब तक होश है, धर्म का निर्वाह करो, नीति परक व्यवहार करो। गलतियाँ कौन नहीं करता? स्वयं को कभी पूरी तरह निर्दोष न समझो, परन्तु दोषों को परखकर सुधार करो, हालात को सुधारने का प्रयत्न करो, नम्र बनो, दूसरा बने या न बने, स्वयं को झुका दो। लज्जाशील, संयमी, शान्त, सत्वगुणी, शील सम्पन्न व शुद्ध हृदय वाला शीघ्र झुकता है, क्षमा माँग लेता है। परन्तु राजोगुणी, अभिमानी, लोभी, कामी और क्रोधी झुकना नहीं चाहता, कभी यह भी नहीं कहता कि हाँ हमसे भी गलती हुई क्योंकि हर समय सिर ऊँचा उठा रहे, नाक नीची न हो यह मिथ्या अभिमान उन्हें झुकने ही नहीं देता। किसी का कुछ गुरूर किसका का कुछ उन्हें नम्र बनने ही नहीं देता। अतः शान्त भाव से परखते चलो और मन में उनके लिये नफरत पैदा न करो नहीं तो अपना ही अनिष्ट होगा। शिक्षा लो ऐसे बिगड़े चरित्रों से, घृणा करके हृदय गन्दा न करो, नहीं तो संस्कार चक्र बिगड़ेगा। कहाँ जाओगे व्यक्तियों से भागकर? सब जगह गुणवृत्ति विरोध है, जो प्रत्येक व्यक्ति को हर रिश्ते पर सताया करता है। वही सूर्य की सप्तरंगी इन्द्रधनुषी किरणें सम्पूर्ण जगत में फैली हुई हैं? अर्थात् मिश्रित गुणों वाले व्यक्ति कहाँ नहीं हैं? बिना रिश्ते भी वही वृत्तियाँ, रिश्ते में भी वही वृत्तियाँ, फिर क्यूँ उलझा जाये? व्यक्ति को अन्तर में झाँकना होगा, रोज दिमाग की सफाई करने के लिये स्वयं महान गुण पैदा करने होंगे।

चित्त की धुलाई करने के लिए बस एक ही उत्तम तरीका है कि जिस–जिससे फटकार, दुत्कार, भय व तिरस्कार मिले, उन्हें सच्चे मन से क्षमा कर दो। उनसे कटो नहीं, नफरत पैदा न करो दिल में उनके लिये, बल्कि उनके सद्गुणों का भी चिन्तन करो। पूरी तरह दुर्गुणी भी कोई नहीं व पूरी तरह सद्गुणी भी कोई नहीं, हाँ अवस्था विशेष होती है, किसी का रजोगुण हाई वोल्टेज पर किसी का सतोगुण, किसी का तमोगुण। जो प्रतिशत

अधिकांश से अलग बचता है वह भी विशेष तारतम्य रख । है, अर्थात् किसी का न्यूनांश सत्व तो किसी का रज व किसी का तम। दुर्वासा ऋषि महर्षि थे परन्तु क्रोध की मात्रा भी हाई पावर की थी। थोड़ा-थोड़ा तमोगुण या रजोगुण ऋषियों में भी उभर आता है परिस्थिति के अनुसार। साधुओं को भी क्रोध आता है। धर्मग्रन्थ भरे पड़े हैं इन उदाहरणों से कि अमुक ऋषि ने उसे शाप दिया, अमुक साधू ने उसे भस्म कर दिया आदि-आदि। ऐसे में यदि साधारण मानव रिश्ते नाते में ही मोहमाया का जीवन-यापन करते हुए भोग विलास में डूबे हुए यदि क्रोध करते हैं, अहंकार करते हैं तो क्या आश्चर्य? इस संसार में देखा जाये तो कुछ भी आश्चर्य नहीं? तीनों गुणों का खेल त्रिगुण-मयी माया खेल रही है। आखिर पदार्थ व देहबद्ध जीव सभी कुछ त्रिगुण की संरचना है। बस आत्मा निर्लेप है। अतः क्यूँ नफरत से दिल जलाया जाये।

जब इस स्तर पर बात चित्त में चक्कर लगाती है कि मन में त्रिगुणी, बुद्धि भी त्रिगुणी, नफरत करने वाला भी त्रिगुणी, जिससे नफरत की जाये वह भी त्रिगुणी। अर्थात् सोचने वाला मन भी तीनों गुणों में बर्ताव कर रहा है तथा जो पदार्थ-विषय-वस्तु-व्यक्ति सोच की सामग्री है वे भी तीनों गुणों का विस्तार। तो बात समझ में आती है कि गुण ही गुणों में बरते जा रहे हैं। अतः क्रोध भी शान्त, अहंकार भी ध्वस्त, ईर्ष्या भी पस्त, द्वेष भी स्वाहा। स्वयं अन्तःकरण में शान्ति का साम्राज्य छा जाता है, हृदय में नमी आ जाती है। गड़बड़ी तब होती है, जब दूसरा व्यक्ति नम्रता को कायरता या मूर्खता का नाम देता है। परन्तु क्या किया जाये, शान्त रहना भी स्वभाव में आता है। दूसरे व्यक्ति शान्त तालाब में डेला फेंककर तरंग पैदा करते हैं अर्थात् आस-पास के व्यक्ति गलत व्यवहारों व टकरावों से उद्वेग पैदा करते हैं। ये दुर्भाग्य है व्यक्ति का, बस यही सोचकर सन्तोष पैदा कर लेना चाहिए। नसीब है अपना-अपना, किसी-किसी को तमाम उम्र क्लेश देने वाले लोग मिलते हैं?

एक तालाब रो रहा था कि हे प्रभो! तुमने मुझे कहाँ पैदा किया, यहाँ तो राहगीर ज्यादा आते हैं, बच्चे डेले मारते हैं। मेरा शान्त शरीर तरंगित होकर अशान्त हो जाता है। अतः मुझे निर्जन में स्थान दो। प्रभु ने उसकी पुकार सुनी। उसे वहाँ से निर्जन में स्थापित कर दिया। वहाँ कोई डेला नहीं मारता था। परन्तु दुर्भाग्य, वहाँ पेड़ बहुत थे। एक वृक्ष तो तालाब के बिल्कुल किनारे लम्बा चौड़ा विशाल वृक्ष। अब कभी कोई चिड़िया पत्ता तोड़ती तो कभी कोई बीट करती। पत्ता तालाब में गिरता। तालाब सुबह से शाम तक कई बार अशान्त होता। फिर प्रार्थना की कि प्रभो! यहाँ किसी जीव को न आने दो। प्रभु ने प्रार्थना स्वीकार की। परन्तु हवा इतनी तेज चलती कि सूखे पत्ते उस किनारे वाले वृक्ष के भी व अन्य वृक्षों के भी उस तालाब में गिरते। तालाब दिन रात अशान्त रहता। फिर प्रार्थना की कि प्रभो! मुझे वृक्षों, घासों से भी दूर रखो। प्रभु ने फिर प्रार्थना सुनी उसे दूर स्थापित किया जहाँ घास भी न हो। अब हवा चले तो मिट्टी ज्यादा उड़े क्योंकि घास व वृक्ष की जड़ें मिट्टी बाँधे

रखती है, परन्तु अब वहाँ घास थी न वृक्ष ही। अतः हर पल हर क्षण मिट्टी के कण उड़कर तालाब में जा गिरते। तालाब फिर अशान्त। फिर प्रार्थना की कि प्रभो! आप मुझे वहाँ स्थापित करें जहाँ हवा न चले। प्रभु ने फिर स्वीकार किया कि ठीक है, ऐसा ही होगा। ईश्वर ने वायु देवता को बुलाया और आज्ञा दी कि इस तालाब के इर्द–गिर्द भूलकर भी मत बहना। पवन देव अब वहाँ न लहराते। उस तालाब में दुर्गन्ध पैदा हो गयी। छोटे–छोटे कीड़े रेंगने लगे। तालाब अब अशान्त ही नहीं हाय–हाय चिल्लाने लगा, दर्द से कराहने लगा।

ईश्वर को पुकारा प्रभु फिर दर्शन दिया कि अब क्या हुआ? तालाब ने कहा, भगवन! मेरी तो देह में कीड़े पड़ गये। प्रभु ने कहा कि अब क्या चाहते हो? कि शान्ति चाहता हूँ। ईश्वर ने कहा कि ठीक है, जब तुम्हें न मानव प्यारे, न पशु पक्षी, न घास, न वृक्ष, न वायु। तो मैं तुम्हारा अस्तित्व ही मिटा देता हूँ परन्तु इसके लिये तुम्हें सूर्य की प्रचण्ड गर्मी सहन करनी होगी। अब तक तो तुम बचे रहे, कोई तुम्हारा जल पीता, कोई पत्ता गिरकर सूर्य की किरणों से ढकता, तुम्हारी देह की रक्षा करता, वायु चलती तो तुम्हें शीतल रखती, सूर्य से बचाती। ढेले तुम्हारी देह में तरंगे पैदा करके चंचल बनाते व सूर्य की तपन को लगातार तुम्हारे ऊपर पड़ने से बचाते। परन्तु तुम तो सभी के अन्दर दुर्गुण ही तलाशते रहे। अतः तैयार हो जाओ प्रचण्ड भानु के ताप में तपने के लिये। न तुम रहोगे न तुम्हारी व्यथा। तालाब क्षमा माँगने लगा। प्रभो! आज आपने मेरी आँखें खोल दी। उस भीषण कष्ट में भी कहीं न कहीं मेरी रक्षा का कवच छिपा था और मुझ अज्ञानी की दृष्टि सिर्फ कष्टों पर रही। नहीं प्रभो! मुझे सबसे पहले वाली जगह पर ही स्थापित कर दो। अब आपको पुकारूँगा तो सिर्फ आपके प्रेम में, अपने कष्टों से मुक्ति पाने को नहीं। क्षमा करो प्रभु! क्षमा करो! ईश्वर ने प्रार्थना सुनी और उसे उसी जगह स्थापित कर दिया, जहाँ वह पहले था।

अतः घर रहो या दफ्तर में, आश्रम में रहो या वनों में। मानव तो यही त्रिगुण के विस्तार वाले होंगे। जगत के पदार्थ भी त्रिगुणमयी होंगे। अतः कहाँ जाओगे परिस्थितियों से भागकर। ईश्वर जिस स्थान पर जिनके मध्य रखें, वहीं ठीक है। कहीं न कहीं उसकी अपार दया का भाव छिपा है। न बिछुड़ने का गम रखो न मिलने की खुशी। न मोह रखो न नफरत। समभाव, लड़ो–भिड़ो परन्तु घृणा को जीवित न रखो। कहो, सुनो, मनमुटाव करो परन्तु फिर पूर्ववत् व्यवस्था प्यार की पालो। स्वभाव में हर जगह तेजी आती है, हर किसी के अन्दर वैमनस्य उभर आता है परन्तु क्षमा व प्यार को स्थान दो, नम्र बनो, शील बनो, शान्त बनो, सहनशील बनो। एक दम कोई महान नहीं बनता। धीरे–धीरे अपने अवगुणों पर ध्यान दो, दूसरों के गुणों पर ध्यान दो। संयम की आदत शनै–शनै परिपक्व हो जायेगी यदि मनुष्य अभ्यास का अनुरागी है। कौन दुर्गुणों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता? समय लगता है, अधीर मत बनो, साधना को निष्काम बनाओ, परिणाम पर दृष्टि मत रखो, फल ईश्वर के हाथ में है, जरूरी नहीं कि मिले। सफलता ही मिले, ऐसा भी मत सोचो क्योंकि

इसमें भी सकामता की बू है। बस प्रेम करो ईश्वर से, साधना सफल हो, यह माँग भी खतम कर दो। जब ईश्वर अपना है तो माँग कैसी? क्या अपनों से माँगा जाता है, उससे मिलने की इच्छा करो, उससे प्रेम बढ़े, यह इच्छा करो, हमारी हर माँग खतम हो जाये, यह इच्छा करो। गोपी भाव रखो–

कण्ठ लगा हरि ने कहा, कुछ तो प्यारी माँग।
कहा रहो इस माँग में, यही हमारी माँग।।

अर्थात् बस एक ही माँग हो कि वे हमेशा पास रहें। और पास ही तो हैं। हमारे दुर्गुणों की दीवार आड़े है। हम तो देह में चेतना है, उसी का ही अंश। परन्तु जड़ पदार्थों का भी एक कण ऐसा नहीं कि वह उसमें न हो। फिर वह हमसे दूर कहाँ। अगर दूरी है तो दुर्गुणों की । इन दुर्गुणों को दूर करना ही साधना का लक्ष्य होना चाहिये। ईश्वर प्राप्ति तो हर समय है, क्योंकि ईश्वर के बिना तो श्वास की गति भी नहीं। ईश्वर हमारे अन्दर न हो तो शरीर चल भी नहीं सकता। अतः साधना का अर्थ है मन को साधना। मन के अन्दर छिपी आसक्तियाँ व काम क्रोध की लहरें चित्त को दूषित करती हैं। परन्तु घबराना नहीं, यदि अभ्यास की लत है तो दुर्गुण भी दूर होंगे। नेक रास्ता हमेशा शान्ति का पैगाम लाता है। बस संयम–नियम में परिपक्वता आती चली जाये, यही साध हो साधना की। चित्त शुद्ध तो नित्य बुद्ध। प्रयत्न करना चाहिये कि जो गलतियाँ हों, आगे न हों, कोई सुधरे न सुधरे, साधक को सुधरना ही उसकी लायकी है। वाणी पर संयम भी साधना है। स्थिति जिनकी प्रबल है, उनकी दुर्वाणी उनका कुछ नहीं बिगाड़ती, वे अभिमानी व्यक्ति संयम नहीं बरत सकते, हर समय लावा उनके अन्दर उबला रहता है। मुख से कुछ नहीं कहते तो व्यवहार अटपटा दिखाना शुरू कर देते हैं।

भाषा जुबान ही नहीं बोलती, शरीर का हर अंग बोल जाता है, शरीर की हर क्रिया वार्तालाप कर जाती है। उठने–बैठने, चलने–फिरने के हर तरीके भाषा बोलते हैं कि आज यह किस भाव में घूम रहा है। शरीर के स्पर्श से जो हवा टकराकर आती है, वह तन मन के भाव पहुँचा देती है। बस पकड़ अधिक जुबान की ही होती है। इसलिये वाणी का संयम साधना में अति आवश्यक है क्योंकि इसी के कारण झगड़े अधिक होते हैं। क्या दुर्योधन नहीं जानता था कि ईर्ष्या यदि मेरे अन्दर है, तो भीम भी व्यर्थ टक्कर लेते हैं? क्या द्रौपदी नहीं जानती थी कि धृतराष्ट्र अन्धे हैं, परन्तु दुर्योधन तो आँख होकर भी अन्धों की भाँति व्यवहार करता है। फिर भी बोल दिया, "अन्धे की औलाद भी अन्धी।" इसी वाणी का दण्ड भुगतना पड़ा कि कुरु–सभा में केश पकड़कर घसीटते हुए लाया दुशासन दुर्योधन की आज्ञा पर। अतः कुछ शब्द ज्यादा ही भारी पड़ जाते हैं। दुर्बल स्थिति वाले को कठोर भुगतान करवाते हैं, प्रबल स्थिति वाले। अतः वाणी सचमुच जूते अधिक लगवाती है–

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गई सरग पताल।
आपु तो कहि, भीतर रही, जूती खात कपाल।।

वाणी तो एक बार मुख से निकली और अन्तःकरण चाहे अन्दर से पश्चाताप करके चाहे निर्मल भी हो गया हो, परन्तु लोगों के जूते कपाल पर तड़ातड़ बहुत दिन तक पड़ते हैं। सच्चा न्यायाधीश केवल ईश्वर है। वही जानता है कि व्यक्ति किस परिस्थिति में कौन सी बात व कौन सा कर्म कर रहा है, अतः आसानी से दण्ड का विधान नहीं करता। परन्तु मनुष्य के अन्दर तो जरा–जरा सी बात पर जुनून छा जाता है, तुरन्त दण्ड का व्यवहार। इस विषय में एक प्रसंग याद आ रहा है–

एक व्यक्ति मृत्यु के बाद जब दूसरी दुनिया में पहुँचता है तो वहाँ की अदालत में उसे पेश किया जाता है। शुभ–अशुभ सब उसके सामने रखे जाते हैं (जो उसने किये थे)। वह अपने सारे अपराध स्वीकार कर लेता है परन्तु बताना चाहता है कि किन कारणों से वे अपराध हुए। लेकिन उसकी बात सुनी नहीं जाती। गवाही देने के लिये वहाँ के मुंसिफ ईश्वर को बुलाते हैं। ईश्वर को कटघरे में खड़ा करके कहते हैं कि इस व्यक्ति ने अपने सारे जुर्म कबूल कर लिये, फिर भी कहता है कि वह बेगुनाह है। इसलिये, हे खुदा! तुम्हें गवाही देने के लिये बुलाया है।

कटघरे में खड़ा ईश्वर बोलना शुरू करता है। वह कहता है कि यह व्यक्ति जब छोटा था तो इसकी माँ को बहुत प्यार करता था और जब भी इसका पिता इसकी माँ पर जुल्म करता तो यह अपने पिता से उलझ जाता था। छोटा–सा था, कुछ और तो नहीं कर सकता था, लेकिन अपने दाँतों से पिता की उंगलियाँ जख्मी कर देता था। तीनों मुंसिफ ईश्वर की बात बीच में ही काट देते हैं, कहते हैं–हमें इसकी गवाही नहीं चाहिये कि यह अपनी माँ को प्यार करता था या नहीं। हमें यह बताओ कि इसने किसी दूसरे के बगीचे से फूल तोड़ने का जुर्म किया था या नहीं। ईश्वर मुस्कराया और कहता है कि वह फूल तो इसने अपनी इरमा को देने के लिये तोड़ा था। इरमा बहुत छोटी–सी, प्यारी–सी लड़की थी। यह उसे बहुत प्यार करता था। उस व्यक्ति की आँखें आँसू से भर जाती है। एकदम पूछता है, भगवान! वो इरमा कहाँ चली गयी? मैंने उसे बहुत ढूँढा था। ईश्वर ने कहा– तुम तो गरीब थे। उसके पिता ने उसका विवाह एक अमीर व्यक्ति से कर दिया, सन्तान को जन्म देते समय उसकी मृत्यु हो गयी। वह व्यक्ति रो पड़ता है।

अदालत के व्यक्ति (मुंसिफ) फिर ईश्वर कीबात बीच में ही काट देते हैं और कहते हैं कि विस्तार में जाने की क्या आवश्यकता है? हमें यह बताओ कि यह शराब पीने लगा था या नहीं और बुरी सोहबत में उठने–बैठने लगा था। ईश्वर ने कहा–इसका एक दोस्त था, जिसे यह बहुत प्यार करता था। वह जलसेना में था। एक दिन उसका जहाज डूब गया और वह मर गया। वह सदमा यह सह नहीं सका और हताशा में शराब पीने लगा। फिर यह एक शराबी के घर जाने लगा, जिसकी एक बेटी थी मैरी। उसे प्यार करने लगा। लेकिन उसके पिता ने धन कमाने के लिये उसे एक कोठे पर बैठा दिया। जिन्दगी से परेशान होकर वह

युवावस्था में ही मर गयी और मरते हुए भी वह इसी का नाम पुकारती रही। वह व्यक्ति फिर आँसुओं में डूब जाता है। मुंसिफ तो ईश्वर से नाराज हो उठते हैं– कहते हैं इन घटनाओं का इस मुकदमें से क्या ताल्लुक? हमें यह बताइये कि इसके हाथों से कत्ल हुआ था या नहीं? ईश्वर कहता है कि– शहर में जब दंगा हुआ तो इसके हाथों पहला कत्ल हुआ था और वह भी इसने सिर्फ अपने बचाव में किया था। बाद में इसे जेल में डाल दिया गया। जेल से छूटने के बाद यह बाहर आया तो इसने एक लड़की से प्रेम किया और वह लड़की बेवफा निकली, फिर यह बर्दाश्त नहीं कर पाया। इसने उस लड़की का कत्ल कर दिया। इस तरह कहानी बढ़ती चली गयी है। बाद में जब ये मुंसिफ लोग अपना फैसला लिखने के लिये अलग कमरे में जाते हैं, तो वह व्यक्ति ईश्वर से पूछता है, कि हे ईश्वर! यह क्या हो रहा है? मैंने तो यह समझा था कि इस दुनिया में तो फैसला कम से कम तुम ही करोगे। उस वक्त ईश्वर गमगीन हो उठता है और कहता है– फैसला सिर्फ वे लोग दे सकते हैं, जो अधूरा सच जानते हैं। मैं पूरा सच जानता हूँ और पूरा सच जानने वाले इस तरह फैसला नहीं दिया करते। (–रहस्य गाथा से उद्धृत)

यह कहानी बहुत कुछ कह गयी। हम दूसरों से कुछ कारनामें देखकर उनसे द्वेष व ईर्ष्या पाल लेते हैं। सर्वत्र उनकी बुराई करते हैं। नहीं! इस गलती का अहसास बहुत गहरा करना होगा। जब कभी–कभी मन कारणों की जड़ों की तह तक पहुँच जाता है तथा उनकी जगह स्वयं को उसी परिवेश में रखकर देखा जाता है चित्त की धुलाई हो जाती है और पश्चाताप करता है अन्तःकरण, कि अरे! मैं तो बहुत मूर्ख था, जो निन्दा ही करता रहता था। सभी ठीक है, बस मैं ही गलत हूँ, यह गहरा आभास होने लगता है। उस समय सारी दुनिया अच्छी लगती है। सभी रिश्ते मित्र मण्डली लगती है। गीता में भगवान बिल्कुल डंके की चोट पर कहते हैं कि मन ही शत्रु व मन ही मनुष्य का मित्र है। परन्तु व्यवहार में स्वयं को कठिनाई में तब पाता है जब दूसरे धुले हुए चित्त से वार्तालाप नहीं करते। यहीं सामञ्जस्य नहीं बन पाता। सभी के अन्तःकरण निर्मल हों, ऐसा भी सम्भव नहीं। हर कोई दिमाग की सफाई करने का अभ्यासी नहीं। इसलिये साधना में परिवेश आड़े आता है। शायद, इसीलिये साधना के तार परिपल्लवित करने के लिये सुगन्धित वातावरण चाहिए, जहाँ भजन, कीर्तन, जप, तप, स्वाध्याय, ईश्वरीय गुण, लीला, गुरुचर्चा, कृपा का माहौल हो। परिवेश साधना में बहुत बड़ा साधक व बाधक बन कर आता है। सभी कुछ परिश्रम पर ही निर्भर नहीं। बहुत अधिक परिश्रम के बाद भी यदि परिणाम ठीक नहीं आ पा रहा है तो समझ लेना चाहिये कि कहीं कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है अन्यथा संस्कारों का प्रभाव चित्त पर अवश्य पड़ेगा यदि सुगंधित वातावरण से अलग वातावरण रहा हो। ईश्वर से प्रार्थना है कि हे ईश्वर! सभी के हृदय दयालु बनें, शुद्ध बनें, तेरे भक्त बनें, त्याग के साथ कुछ ग्रहण करें, सब तेरी ओर चलें और तेरी ही चर्चा करें। सब मित्रवत् रहें, सब मित्रवत् रहें, सब मित्रवत् रहें। यदि मित्रवत् भी न रह पायें इन्सान–इन्सान के बीच इन्सानियत का धर्म है। अतः सभी धर्मवत व मित्रवत रहें।

क्रमशः

बेजोड़ गुरुभक्त दम्पत्ति

प्रेषक–**केशव देव उपाध्याय**, वाराणसी

यह कृपा प्रसंग सन् १९६३ का है। दक्षिण भारत के प्रचार कार्यक्रम के बाद आराध्यदेव एवं अन्य पार्षदगणों के साथ एक रात एवं दो दिन की लगातार यात्रा के बाद सायंकाल करीब साढ़े छः बजे टुण्डला स्टेशन पर उतरकर संवाई धाम पहुँचे। करीब पैतालिस घण्टे की इस लगातार यात्रा में, जो मेल ट्रेन द्वारा की गयी, अनाथनाथ ने कभी भी खाने–पीने की बात तो अलग, जल भी ग्रहण नहीं किया। इस यात्रा में आदरणीय भाई श्री पुष्कर जी, श्री सूरज जी एवं और आश्रमवासी शिष्यों के साथ कुछ गृहस्थी बच्चे भी थे। श्री त्रिलोकीनाथ ने स्वयं तो कुछ भी ग्रहण नहीं किया परन्तु साथ वाले पार्षदगणों को हमेशा आह्लादित एवं आशीर्वादात्मक रूप में खिलाते–पिलाते चल रहे थे। सायंकाल आश्रम में पहुँचने के बाद आदरणीय भाई श्रीपुष्कर जी ने स्नान किया एवं आराध्यदेव के स्नान के लिए पवित्र जल कुएँ से निकाल कर रखा। साथ ही जब तक श्री गुरुदेव भगवान अपनी आश्रमवासी शिष्यों से अपने अनुपस्थित अवधि का हाल–चाल ले रहे थे। भाई जी ने सब्जी काटकर बनाना आरम्भ कर दिया एवं इसी बीच आटा भी गूंथ लिया। करीब बीस मिनट बाद अनाथनाथ ने आवाज लगाई, अरे पुष्कर अब हम स्नान करेंगे। श्रीपुष्कर जी ने कहा कि, जी प्रभु जी! आपके स्नान के लिये कपड़ा और पानी रख दिया है, स्नान करने की कृपा करें। श्री गुरुदेव भगवान ने स्नान किया एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी की आरती करने के बाद, आकर आरामकुर्सी पर विराजमान हो गये। उसके बाद आदरणीय भाई श्रीपुष्कर जी ने गुरुदेव भगवान का कपड़ा साफ करके सूखने के लिए डाल दिया।

आराम कुर्सी पर बैठते ही आराध्यदेव जी ने आवाज लगाई, लल्ला पुष्कर! बड़ी तेज भूख लगी है। जल्दी खाने का प्रबन्धन करो। आवाज सुनकर भाई श्रीपुष्कर दत्त जी आये एवं हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। श्रीप्रभु जी की आज्ञा समाप्त होते ही, श्रीपुष्कर दत्त जी ने प्रार्थना किया कि प्रभु जी! बस दो मिनट में श्रीप्रभु जी को भोग लगाता हूँ। आराध्यदेव जी ने कहा, अच्छा आज देखता हूँ तुम्हारा दो मिनट। जाओ जल्दी करो। श्रीपुष्कर जी, जी प्रभु जी कहकर, रसोईघर में गये। दो प्रकार की सब्जी, दो रोटी एवं दूध का श्री दादा गुरुदेव को भोग लगाकर मात्र पाँच मिनट में श्री गुरुदेव भगवान के सामने खड़े हो गये एवं हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज जी! भोग लगा दिया है, भोजन कर लीजिए। अनाथनाथ गये एवं भोजन किया तथा भाई श्रीपुष्कर जी की पीठ थपथपाते हुए बोले, "हाँ, ये हुई न बात"।

दूसरे दिन भाई श्री पुष्कर जी ने जब भोग लगाकर आराध्यदेव को भोजन करने के लिए प्रार्थना की, तो श्री प्रभुजी भोजन करने गये एवं भोजन के बाद हाथ साफ करते समय

कहने लगे कि, "हमने तो धनाना का कार्यक्रम दे दिया है।""हमने तो धनाना का कार्यक्रम दे दिया है।" भाई श्री पुष्कर दत्त जी ने प्रार्थना की कि महाराज जी धनाना का कार्यक्रम किसने लिया है? श्री आराध्यदेव जी ने अपने मुखारबिन्द से कहा कि,"कोई प्रोग्राम ले या न ले, हमने तो चार दिन बाद, तीन दिन का योग प्रचार कार्यक्रम दे दिया है।" श्री सिद्धयोग के नवागन्तुक भाई–बहनों को यह बताना समीचीन है कि धनाना कस्बा आदरणीय गुरुभाई श्री पुष्कर जी का जन्म स्थान है एवं उसी गाँव में इनका परिवार आज भी निवास करता है।

आराध्यदेव जी ने अपने मुखारबिन्द से कहा कि यदि तुम भी उस कार्यक्रम में सम्मिलित होना चाहते हो तो चले जाओ। आज के चौथे दिन हम "धनाना" का कार्यक्रम आरम्भ कर देगें। जिस समय की यह बात है उस समय भाई श्रीपुष्कर जी के गाँव में लगभग हमारे पैतालिस–पचास गुरुभाई–बहन थे, परन्तु भाई श्रीपुष्कर जी को यह जानकर आश्चर्य हो रहा था कि धनाना का कार्यक्रम लिया और हमें बतलाया तक नहीं। उनकी विस्मय की स्थिति देखकर अनाथनाथ ने उन्हें साठ रुपया दिया एवं कहा कि आज ही तुम कार्यक्रम के निमित्त धनाना चले जाओ। भाई श्रीपुष्कर जी आराध्यदेव जी की आज्ञा स्वीकार कर धनाना पहुँच गये। अपने गाँव पहुँचने के साथ ही उन्होंने अच्छी प्रकार पता किया, परन्तु किसी ने कार्यक्रम नहीं लिया था। यद्यपि यह सबके लिये आश्चर्य का विषय था परन्तु श्रीपुष्कर जी के लिए विशेष, कि धनाना का कार्यक्रम श्री आराध्यदेव जी ने क्यों दिया ?

ख़ैर! यह सोचकर की उनका कोई भी कार्य अकारण नहीं होता एवं यदि अनाथनाथ ने धनाना का कार्यक्रम दिया है तो सबका भला ही होगा, हमारे सभी आदरणीय भाई–बहन खूब विधि–विधान से कार्यक्रम की तैयारी करने लगे। चौथे दिन श्रीगुरुदेव भगवान पूर्वाह्न ही धनाना गाँव के नजदीकी स्टेशन पहुँच गये एवं साधन द्वारा उनका धनाना गाँव में खूब गाजे–बाजे एवं जलूस के साथ प्रवेश कराया गया। यह कार्यक्रम धनाना गाँव की ही एक धर्मशाला में मनाया जा रहा था जिसके करीब एक पोखर एवं पुराना शिव मन्दिर था। कार्यक्रम के अन्तिम अर्थात् तीसरे दिन सायंकाल के कार्यक्रम के पूर्व अपने पास खड़े एक बारह–तेरह साल के बच्चे से भाई श्रीपुष्कर जी की तरफ इशारा करके पूछा,"लल्ला, इन्हें पहचानते हो तथा इनका घर भी जानते हो," उसने अपनी तोतली बोली में कहा कि जी गुरुजी! मैंने इनका घर देखा है तथा इनके परिवार के सभी सदस्यों को पहचानता हूँ। श्री आराध्यदेव जी ने उसे अपने पास बुलाया एवं आदेश दिया कि इनकी (भाई श्रीपुष्कर जी की) धर्मपत्नी तथा इनकी माँ को यह बताकर बुला लाओ कि हमने अभी बुलाया है। उसने जी गुरुजी कहा एवं दौड़े–दौड़े जाकर बुला लाया। उसके चले जाने के बाद भाई श्रीपुष्कर जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि महाराज जी हमारी पत्नी एवं माँ को क्यों बुला रहे हो? श्रीगुरुदेव भगवान ने कहा कि उसी से बात करने के लिए तो यह प्रोग्राम तय किया है।

आज प्रोग्राम का अन्तिम दिन है उससे बात तो कर लें। कल तो हम अगले कार्यक्रम पर निकल पड़ेंगे।

आदरणीय भाई श्रीपुष्कर जी की धर्मपत्नी बिना पढ़ी-लिखी एवं सामाजिक समयोचित आचार विचार से अनभिज्ञ महिला थी। अतः भाई जी को यह भय बना हुआ था कि कहीं उनकी धर्मपत्नी अटपटा या अनुचित उत्तर न दे देवें। यह भी भय बना हुआ था कि आने के बाद श्रीगुरुदेव भगवान को प्रणाम निवेदित करेंगी या नहीं। अतः वे दौड़े-दौड़े पास में स्थित शिव मन्दिर में चले गये एवं एक पैर पर खड़े होकर भगवान शिव से प्रार्थना करने लगे कि हे शंकर भगवान ऐसी कृपा करना कि श्रीगुरुदेव जी के सामने हमारी पत्नी कोई भी अनुचित व्यवहार न करें। यदि आपने ऐसी कृपा की तो श्रीगुरुदेव के चले जाने के बाद आपको सवा किलो मिठाई चढ़ाऊँगा। वे कभी शंकर भगवान को देख रहे थे एवं कभी घर से आने वाली माँ एवं पत्नी की तरफ देख रहे थे कि कब आ रही है ? उन्हें ज्योंही दिखायी दिया कि उनकी माँ एवं धर्मपत्नी उस बच्चे के साथ आ रही हैं जो बुलाने गया था तो वे तत्काल श्रीगुरुदेव भगवान के पास आकर बैठ गये।

आने के बाद सर्वप्रथम उनकी माँ ने श्रीगुरुदेव भगवान को चरण स्पर्श कर प्रणाम किया एवं उसके बाद उनकी धर्मपत्नी ने श्रीगुरुदेव भगवान के चरणों में प्रणाम निवेदित किया एवं गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया। चूँकि दोनों घूँघट में थी। अतः श्रीगुरुदेव भगवान ने साथ आये बच्चे से प्रश्न किया कि,"लल्ला! पुष्कर जी की धर्मपत्नी कौन है ?" बालक द्वारा बतलाने के बाद श्री गुरुदेव भगवान ने श्रीपुष्कर दत्त जी की धर्मपत्नी से कहा कि,"लल्ली! एक बात मैं तुमसे पूछता हूँ उसका उत्तर तुम बिल्कुल सत्य बतलाना। अपने अन्दर खूब अच्छी प्रकार सोच-विचार कर लेना, कि तुम्हारा फायदा या लाभ किसमें है ? उसके बाद मन में जो भाव आये वही हमसे सत्य बता देना।" श्रीगुरुदेव भगवान ने अपने मुखाबिन्द से प्रश्न किया कि, "लल्ली! तुम्हारे पति, जिन्हें ज्यादे समय तुम्हारे पास रहना चाहिए, प्रायः हमारे पास ही रहते हैं। तुम इनकी धर्मपत्नी हो एवं तुम्हें यह अधिकार है कि तुम इन्हें अपने पास ही रखो। साथ ही पुष्कर तुम्हारे पति है अतः इनका भी यह कर्तव्य है कि यह सदैव तुम्हारे साथ रहे एवं सुख-दुःख में सहभागी हो। अब तुम सोच विचार कर पाँच मिनट के अन्दर हमें यह बता दो कि पुष्कर हमारे साथ रहें या तुम्हारे साथ रहे। इस समय तुमको यह भी बता दूँ कि हमारे भाव पुष्कर के लिए सदैव वही रहेंगे, चाहे ये हमारे साथ रहे या तुम्हारे साथ रहे। अब सत्य-सत्य सोचकर पाँच मिनट के अन्दर बतलाओ।"

अब आज की हमारी गुरु-बहन इस तथ्य पर विचार करें कि, यदि श्रीगुरुदेव भगवान यही प्रश्न इन बहनों से उपरोक्त परिस्थितियों में करते तो उनका क्या उत्तर होता? इसका उत्तर बताने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इसका उत्तर मन में ही समझकर, आपको स्वयं अपनी स्थिति का पता लग जायेगा। हमारी उस परम आदरणीया गुरु बहन ने जो उत्तर

दिया वह यह था कि हे गुरुजी महाराज! इनके (श्रीपुष्कर जी के) आपके साथ रहने में हमें जो सुख, आनन्द एवं प्रसन्नता मिलती है उसके मुकाबले इनका हमारे साथ रहने का दुःख नहीं के बराबर है। यह बात मैं पूरी तरह अच्छी प्रकार से अपने हृदय में विचार करके सत्य कह रही हूँ। मैं ईश्वर की कसम खा करके कह रही हूँ कि हमारा हृदय यह कह रहा है कि ये आपकी सेवा में रहें। यह बात मैं बिल्कुल सत्य-सत्य कह रही हूँ। उसका उत्तर सुनकर श्री आराध्यदेव ने उसे गले से लगा लिया एवं कहा कि पुष्कर की धर्मपत्नी से हमें यही आशा थी, इसके बाद श्रीगुरुदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्द से आज्ञा दी, लल्ला पुष्कर! दौड़कर पुष्प का प्रसाद लाओ। भाई श्री पुष्कर जी ने पुष्प लाकर दिया एवं श्री गुरुदेव भगवान ने उसे शक्ति सम्पन्न यौगिक पुष्प प्रसाद बनाकर उस परम पवित्र देवी को दिया एवं कहा कि इसे अभी खा जाओ।

इस कृपा के समय आदरणीय भाई श्री सूरज जी भी अन्य पार्षद गणों के साथ मौजूद थे। वे आनन्दकन्द श्रीगुरुदेव जी महाराज के मुँह लगे शिष्य थे। उन्होंने एकान्त पाकर प्रश्न किया कि "महाराज जी, पुष्कर की पत्नी को क्या प्रसाद दिये हो?" अनाथनाथ ने कहा, "लल्ला! पुष्कर के भाग्य में कोई सन्तान नहीं थी एवं हमारी सेवा में सदैव अपने पति को तत्पर रखने वाली हमारी बच्ची निःसन्तान रहे, यह अच्छा नहीं लगता। अतः उसे हमने प्रसाद देकर अपने आनन्दकन्द श्रीप्रभु जी महाराज से दो सन्तानें देने की प्रार्थना की है। श्री प्रभु जी ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है एवं अब दो सन्तानें होंगी।"

चार वर्ष के अन्दर श्रीपुष्कर जी को दो सन्तानें हुईं। इसमें एक लड़की तथा दूसरा लड़का है। लड़की की शादी हो गयी है तथा वह भी बाल-बच्चे वाली है। लड़के की शादी भी हो गयी है, वह भी बाल-बच्चों वाला है। इनके दामाद की आर्थिक स्थिति भी ठीक है तथा उनका पूरा परिवार स्वस्थ्य एवं सानन्द है। इनके एकमात्र पुत्र चि० ऋषिराम जी सरकारी नौकरी में हैं तथा परिवार सानन्द एवं स्वस्थ्य है। आदरणीय श्री भाई जी की पत्नी अर्थात हमारी आदर्श चरित्र वाली गुरुबहन की जीवन ज्योति आज से कुछ वर्ष पूर्व श्री गुरुदेव भगवान की अखण्ड ज्योति में समाहित हो गयी। अब तो बार-बार यही बात कहनी पड़ती है कि-

"यदि पत्नि गुरुभक्ता है तो, पति भी गुरुभक्ति वाला है।
ब्रह्मा ने यह अनुपम जोड़ा, खूब सोच समझकर डाला है।"

❋ ❋ ❋

परमार्थ पथ

रचना शर्मा (मोन्टी), गंगापुर सिटी

हर एक मनुष्य की भीतरी (आत्मा) और बाहरी बनावट (शरीर) समान है। उसका बाहरी आत्मिक रूप भी समान है। उसका कर्ता भी जिसने इस दुनिया को बनाया है और संवारा है वह भी एक है चाहे आप उसे ईश्वर, अल्लाह, गॉड या लार्ड किसी भी नाम से पुकारें।

इसी प्रकर इस संसार से मुक्ति पाकर परमात्मा से मिलने का मार्ग भी एक है। यह मार्ग प्रत्येक मनुष्य के अंदर है; चाहे वह मनुष्य किसी भी जाति, वर्ण या धर्म का क्यों न हो? यह आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने का वह मार्ग है जो विश्वव्यापी है, सबके लिए समान है। यह मार्ग है तो सबके अंदर लेकिन कोई मनुष्य चाहे वह कितना ही विद्वान क्यों न हो, इसे अपने आप नहीं पा सकता। केवल एक सच्चे सद्गुरु ही जो स्वयं इस मार्ग पर चलकर आखिरी मंजिल तक पहुँच चुके हैं हमें इसका भेद प्रदान कर सकते हैं। इसके सिवाय इस मार्ग पर चलने का अन्य कोई साधन या मार्ग नहीं है।

जब तक कोई सच्चा गुरु हमें इसकी चाबी न दे, गुरुमंत्र के साथ हमारा संबंध न जोड़े, हमारी अभ्यास में सहायता न करें और हमें अंदर तक न ले जाये तब तक आत्मिक जागृति और आवागमन से मुक्ति नहीं हो सकती।

परमात्मा हमारे अंदर है परन्तु उसकी प्राप्ति का भेद उस ताले की चाबी सद्गुरु के पास है। जब तक वो हमें यह भेद प्रदान नहीं करते तब तक यह गुप्त रहता है। इस परम चेतन आत्मिक देश के नीचे मन के अति सुंदर लोक है। आत्मा जब ऊपर से उतरती है तो यहां वह मन का साथ ले लेती है और इन लोकों में रहने और कार्य करने के लिए कारण और सूक्ष्म शरीरों का लिबास ओढ़ लेती है। जैसे-जैसे आत्मा नीचे उतरती है, वह पर्दों में छिप जाती है। फलस्वरूप मन शक्तिशाली और उस पर हावी होने लगता है। अन्त में जब आत्मा मन और अपने अन्य शरीरों के साथ सबसे नीचे के प्रदेश इस संसार में आती है तो यहां आकर इस स्थूल शरीर की सीमा में बंध जाती है। यहां आकर आत्मा का असली स्वरूप इतना क्षीण हो जाता है कि उसको अपनी सुध भी नहीं रहती और मन व्याकुल और बेचैन रहने लगता है। सांसारिक बंधनों में बांधकर मन अपनी एक ऐसी हस्ती बना लेता है, जिसके भ्रम में आकर हम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाते हैं। अज्ञान रूपी मदिरा के प्रभाव से इतने उन्मुक्त हो जाते है कि हमें यह ज्ञान नहीं रहता कि हम परमपिता परमात्मा के अंश है।

इस संसार में प्रत्येक मनुष्य के अंदर आत्मा तो है मगर जीवन की बागडोर इस चंचल मन के हाथों में है। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य अत्यन्त बलवान और चतुर मोह रूपी राक्षस के वश में है जिसने हमारी आत्मा को प्रभु से अलग करके कैद कर रखा है। जो उसे

आध्यात्मिक लोकों प्रभु के परमधाम की ओर जाने से रोकती है और इसी मोह रूपी राक्षस ने इसे मन और माया रूपी सीमाओं में बांधकर रखा है। यद्यपि हम सभी इस परमपिता परमात्मा की किरण है उस सर्वव्यापी प्रेम के अंश है। फिर भी इस संसार में आकर मन के चलाए चल रहे हैं।

हमारे गुरुदेव हमें बार–बार चेतावनी देते हैं कि मन हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। हमारी आत्मिक उन्नति और परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी रूकावट है। परंतु मन रूपी राक्षस इतना बलवान है और इसका कार्य करने का तरीका इतना चालाकी पूर्ण है कि हम मन के बहकावे में आकर गुरुदेव की चेतावनी को विस्मृत कर देते।

आत्मा जब अपने परमधाम से नीचे उतरती है काल के मण्डल में आकर मन के प्रभाव में आती है। यहाँ आकर मन का आत्मा के साथ संबंध जुड़ गया। मन के साथ जुड़ने पर ऊपर के चेतन लोकों और परमात्मा से आत्मा का संबंध टूट गया। आत्मा और मन के नीचे के लोकों में आते–आते माया तथा इन्द्रियों के बंधन में अधिक बंधते गए क्योंकि मन और माया के इस देश में इनके बिना काम नही चलता। इस संसार में आने पर मोह और कामनाऐं हमें अपने जाल में फंसा लेती है। बचपन से ही संसार की कामनाएं वस्तुओं के रंग–बिरंगे रूप और यहां का वातावरण हमें अपनी ओर खींचने लगता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार हमारी नीच प्रवृत्तियों को उकसाने लगते है। सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण हमारी इन्द्रियों को क्षणिक सुख देकर विषय–वासनाओं में हमें और भी अधिक डुबो देती हैं।

हमारी पाशविक वासनाओं और पशुओं जैसे कर्मो के कारण हमारे अंदर की इंसानियत धीरे–धीरे पशुता में बदलने लगती है। हमारे कर्म पशुओं जैसे हो जाते है और इसके फलस्वरूप हमें पशुओं का शरीर धारण करना पड़ता है। ताकि हम अपनी पाशविक वृत्तियों और कामनाओं की पूर्ति कर सकें। अनगिनत योनियों में भटकने के पश्चात् हम फिर मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं और फिर हमें प्रभु से संबंध को समझने का स्वर्णिम अवसर मिलता है। यह संसार यह मृत्युलोक सृष्टि का सबसे निचला लोक है। इसमें मानव ईश्वर की सबसे श्रेष्ठतम कृति है और परमात्मा का यही विधान है कि इस मृत्युलोक में आकर मनुष्य के चोले में ही हम अपने परमात्मा से मिलाप का अदभुत आनंद उठा सकते है और ऊपर के लोकों की यात्रा करते हुए परमधाम तक पहुंच सकते हैं, जहाँ से हम आए हैं।

संसार की सुख सम्पत्ति मन को संतुष्ट नहीं करती और मन के मण्डलों की चमक दमक आत्मा के लिए कोई स्थायी आकर्षक नहीं रखती। इसलिए मन और आत्मा दोनों ही बैचेन और दुःखी है और जब तक दोनों अपने धाम में नहीं पहुँचेंगे, दुःखी ही रहेंगे। आत्मा का धाम प्रभु के परम चेतन मण्डलों में है और मन का मूल स्थान ब्रह्म के देश में है जहाँ से वह निकला है।

इस परमधाम तक पहुँचाने का मार्ग बताने के लिए एक सच्चे मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ती है और ऐसा मार्गदर्शक (सद्गुरुदेव) भी उस मंजिल को प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले भक्त की सहायता करने को तत्पर रहते हैं। क्योंकि इस दुनियाँ में ऐसे मार्गदर्शक (सद्गुरुदेव) अवश्य रहते हैं, जिन्होंने अपने मन को वश में कर रखा है और स्वयं अपनी आध्यात्मिक चढ़ाई करके इस परमधाम तक पहुँच चुके हैं और हमें भी वहां ले जाने में समर्थ है। ऐसे सद्गुरुदेव सच्चे जिज्ञासुओं की देखभाल और मार्गदर्शन के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। जिस प्रकार पहाड़ की चोटी पर खड़ा हुआ मनुष्य नजदीक या दूर से सुलगती हुई आग को देख सकता है। उसी प्रकार गुरुदेव परमात्मा के खोजी को देख लेते है और या तो स्वयं उसके पास चले जाते हैं या फिर किसी न किसी बहाने उसे अपने पास बुला लेते है।

कहा जाता है कि जब शिष्य तैयार हो जाता है तो गुरुदेव प्रकट होते हैं और वास्तविक सत्य भी है जब हम अपने आपको पूर्णरूपेण तैयार कर लेते है तब हमें अनुभव होता है कि हमारे अंदर कोई ऐसी वस्तु है जो बुद्धि की तर्क की पहुंच के परे तथा माया और इन्द्रियों के भ्रम जाल से अलग है। जब हम दीन होकर नम्रतापूर्वक अपने आपको परमप्रभु की शरण में ले जाना चाहते हैं, तब हम जान लेते है कि यह संसार भ्रम और माया की मरीचिका है। तब हमारे अंदर पूर्णता और हकीकत की लालसा इतनी तीव्र हो उठती है कि हम जीवन के भेद को पाने के लिए व्याकुल हो उठते है। तब गुरुदेव हमें अपनी शरण में लेते है और हमें अपने निज घर तक पहुँचा देते है। निज घर पहुँचने की यात्रा हमें यहां और इसी जीवन में शुरू करनी पड़ेगी। मृत्यु के बाद या आगे के किसी जन्म में नहीं।

जब साधक अपने परमात्मा के ध्यान में विभोर हो जाता है। तो साधक को अत्यंत आनन्द की अनुभूति होती है। जो कि इस मार्ग की सच्चाई और सद्गुरु की परम चेतन सत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण है। जब शिष्य नौ द्वारों को लांघकर जड़–चेतन की गांठ खोलकर ऊपर के सूक्ष्म लोकों में पहुंचता है तब सद्गुरुदेव ही हमें वहां सूक्ष्म रूप में मिलते है। जिन देहधारी सद्गुरुदेव ने हमें अपनाया है, जिन्होंने हर एक पल पर संभाला और मार्गदर्शन करते हुए परमधाम तक पहुँचने का वचन दिया है। जिनको वह प्रतिदिन देहस्वरूप में देखता है। जिससे बातें और पत्र–व्यवहार कर सकता है। जिनके पास मुसीबतों और दुःखी की घड़ी में जा सकता है। वे ही देहस्वरूप सद्गुरुदेव आन्तरिक मण्डलों में भी अपने सूक्ष्म ज्योतिर्मय स्वरूप में हमें अपनाने और आगे ले जाने के लिए खड़े है। जब तक वे शिष्य को परमपिता के धाम तक पहुँचा नहीं देते तब तक उसका पल भर के लिए भी साथ नहीं छोड़ते।

इसलिए पूर्ण सद्गुरुदेव के शिष्यों को मृत्यु का भय नहीं रहता। जब वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हुए आन्तरिक मण्डलों के पहले लोक में पहुँचते हैं तो मृत्यु का

जीते जी अनुभव करके इसके भय से मुक्त हो जाते हैं।

इस अलौकिक यात्रा में सद्गुरुदेव तब तक अपने शिष्य के साथ रहते हैं जब तक कि वह उसे परमधाम तक न पहुँचा दें। एक बार पूर्ण सद्गुरुदेव का साथ मिल जाने पर शिष्य कभी अकेला नहीं रहता। उसे एक ऐसे मित्र का साथ मिल जाता है जो कभी साथ नहीं छोड़ता। वह केवल इस जिन्दगी में ही नहीं अपितु हमेशा के लिए मित्रता निभाता है। वह ऐसा सच्चा दोस्त है, अनुपम साथी है जो कभी साथ नहीं छोड़ता चाहे शिष्य उससे विमुख क्यों न हो जाए। वह ऐसा मित्र है जिसके निस्वार्थ प्रेम की मिसाल इस संसार में और कहीं नहीं मिल सकती।

अतः हमें अपने शरीर को नश्वर मानते हुए उस अविनाशी, अज-अनादि सिद्ध सद्गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलने का सतत अभ्यास करना चाहिए। और फिर हमें अन्य किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती। सद्गुरुदेव अपने शिष्य को इस सांसारिक जीवन से मुक्ति दिलाकर हमेशा के लिए अपने परमधाम में ले जाते है जहाँ से मनुष्य जन्म-मृत्यु के भय से पूर्णतया मुक्त हो जाता है।

जय गुरुदेव !

* * *

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तमान्यः स मे प्रियः।।

(गीता १२/१७)

जो कभी (सांसारिक प्रिय वस्तु को प्राप्त कर) हर्षित होता है, न उसके नाश होने से द्वेष करता है, न नाश होने पर शोक करता है, न उसको पुनः पाने के लिए इच्छा करता है और जो सभी शुभाशुभ कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

विमर्श : अँधेरे में ही रोशनी के मिलने पर हर्ष, उसके बुझने में द्वेष, बुझ जाने पर चिन्ता और उसे फिर से जलाने की इच्छा होती है; यह शुभाशुभ अंधकार की अवस्था में ही। सूर्य के प्रखर प्रकाश में इनमें से कोई-सी बात नहीं रह जाती।

'श्री गुरु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह (बलिया)

हाथ में लेकर चिमटा और सिर पे जटेदार बाल,
दरस देते रामनवमी पर, प्रभु श्री रामलाल।

करुणा सागर आकर के, पुण्यप्रीत बरसाते हैं,
अंतः आलोकित हो जाता, ऐसी ज्योति जलाते है;
करते निर्मल तनमन, गुरुवर दीन दयाल।
दरस देते रामनवमी पर.......................

दीन जनों के रक्षक, दुखियों का कष्ट मिटाते हैं,
सदा सत्य का ही प्रभुजी, धर्म ध्वज फहराते हैं;
आत्मज्ञान का बोध कराते, काट के मायाजाल।
दरस देते रामनवमी पर.......................

हर कण बोले प्रभुजी, गुरु का ऐसा ज्ञान है,
कर फैलाए जो भी आया, लिया भक्ति वरदान है;
जीवन करते अमृतमय, वो गिरिधर गोपाल।
दरस देते रामनवमी पर.................

राजा हो या रंक यहाँ, प्रभु कृपा सब पाते हैं,
महापातकी भी गुरु के, दरशन से तर जाते हैं;
राजेश वीणा मन की, बोल करे निहाल।
दरस देते रामनवमी पर...................

योगेश्वर महिमा

एक साधक

शताब्दियों से सशरीर हैं,
हिमालय की कन्दराओं में।
जन्म हुआ महान आत्माओं का,
इन्हीं की निर्मल छाँव में।।

लाहड़ी जिनमें एक नहीं थे,
एकरूप में स्वयं न थे।
सूक्ष्म जगत के कार्यव्यूह में,
ये पूर्ण रूप से दक्ष थे।।

भक्तों के चक्रभेदन में वे,
ईश्वरीय निमित्त थे।
प्रकृति के गुण–धर्म में वे,
निरन्तर विरक्त थे।।

उनकी प्रेरणा के प्रवाह में,
सिद्धगुफा स्मृत हैं।
दिव्य चक्षु के प्रकाश में,
वे अभी भी स्थित हैं।।

मृत्युञ्जय योगी कन्दराओं से,
पुनः वापिस आते हैं।
गुह्यज्ञान की व्याख्या कर,
वे पुनः वापिस जाते हैं।।

छात्र जीवन में योग की उपयोगिता

राजेश कुमार सिंह (बलिया)

प्राथमिक पाठशालाओं में विद्यार्थियों को योग के विषय में सिखाना लोग उपयुक्त नहीं समझते। छः से दस वर्ष के बच्चों को योग की एक औपचारिक विद्या के रूप में अभ्यास करने के लिए अत्यन्त अल्पायु का समझा जाता है; परन्तु बच्चों के लिए यह समय प्रभावजन्य होता है। उन वर्षों का उपयोग बच्चों में यौगिक प्रवृतियों को उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है। अध्यापक, सीखने तथा सिखाने की वृतियों का अनुसरण करके योग प्रभावी रूप से सीखने के लिए उचित पृष्ठभूमि तैयार कर सकते हैं, जो इन्द्रिय ज्ञान के प्रशिक्षण में सहायक होगा। अध्यापकों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष विधियों का अनुसरण करके यौगिक मूल्यों को आत्मसात कराया जा सकता है। विद्यालय की सामान्य गतिविधियों जैसे प्रातःकालीन सभा, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा सामूहिक गान आदि बच्चों के व्यक्तित्व में सद्भावना विकसित करने में सहायक होते हैं। उसी बीच खेल तथा अन्य प्रचलित व्यायामों के साथ–साथ वे शरीर की सही स्थिति तथा लयात्मक गति पर उचित ध्यान दे सकते हैं। इस अवस्था में सही श्वास प्रक्रिया के बारे में भी सीखा जा सकता है। बच्चों को यौगिक मूल्यों से सम्बन्धित चुनी हुई कहानियों तथा आत्मकथाओं की जानकारी देने से तथा प्रेरणास्पद कविताओं, श्लोकों तथा राष्ट्रीय गीतों का गान करवाने से तथा प्रातःकालीन सभा, बच्चों द्वारा सामूहिक एकता और जब भी आवश्यक हो एक से पाँच मिनट तक का मौन का निर्देश देने से योग बल का विकास होता है।

ग्यारह–पन्द्रह वर्ष की उम्र के होने पर वे अपने व्यवहार में यौगिक मूल्यों की सराहना तथा उन्हें आत्मसात कर सकते हैं क्योंकि इस उम्र में बच्चों को अपने शरीर, मस्तिष्क तथा इन्द्रियों की मूलभूत जानकारी पहले से ही हो जाती है। इस अवस्था में वे योग सिद्धान्त और प्रायोगिक स्तर को समझ सकते है। सत् कर्म और ध्यान से मस्तिष्क को भी बल दे सकते है।

योग शिक्षकों को चाहिए कि उच्च विद्यालयों में बच्चों के लिए आसनों के क्रमिक निर्देशों पर ध्यान दें। ऐसे यौगिक आसनों का अभ्यास करवायें जिनसे बच्चों पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े। इसी तरह श्वांस को समझने तथा इसे धीमा तथा लयात्मक बनाने सम्बन्धी औपचारिक प्राणायाम का अभ्यास करवायें। अन्य विषयों की तरह निर्देशात्मक तकनीक का प्रयोग न करके योग को पूरे जीवन के एक सहज अंग की तरह पढ़ाया जाये। योग एक प्रायोगिक विज्ञान है इसे अनुभवों से ही सीखना चाहिए।

छात्रों को ध्यान पूर्व आसन करने में सहायता करने से उनके शरीर में लचीलापन तो आता ही है साथ–साथ वे आत्मनिर्भर तथा आत्मविश्वासी भी बनते हैं। उसी तरह प्राणायाम

के अभ्यास से बच्चे ताजगी तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव करते हैं बशर्ते कि प्राणायाम लयात्मक ढंग से सिखाया जाये। यौगिक मूल्यों को केवल बातों तथा श्रवण तक ही सीमित न रखा जाना चाहिए।

माध्यमिक विद्यालय स्तर में बच्चे चूँकि किशोरावस्था से गुजर रहे होते हैं, अतः उनमें भौतिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक स्तर पर परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में स्वतंत्र मानसिक दृष्टिकोण का विकास होता है। वे अपने भविष्य के बारे में, अपनी रूचि, विचार तथा जीविका के बारे में सोचना आरम्भ करते हैं। वे आशावादी तथा उच्च आदर्शों के प्रतिपालक होते हैं। ये मनोवैज्ञानिक समस्याओं का भी सामना करते हैं जिससे विद्यालयों में कई समस्याएँ तथा अनुशासनहीनता की घटनायें उत्पन्न होती है। ये घटनाएँ उपचार, विनाश तथा उदासीनता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। छात्रों के व्यक्तिगत जीवन तथा विद्यालयों के सामान्य वातावरण में ये परिस्थितियां योग शिक्षा की आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाती हैं।

किशोरावस्था में, ऊपरी सीमा के छात्रों को योगशिक्षा, दिशानिर्देश दे सकती है। वे अपने आगे के जीवन में अपने प्रयासों से योग के गम्भीर पहलुओं को जान सकते हैं। वे आत्मसंतुष्टि की उपयोगिता को सराह सकते है और जिसे वे चयन करते हैं तथा जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहते है, दोनों बातो का प्रादुर्भाव कर सकते हैं। इस अवस्था मे वे अपरिग्रह, संतोष, ब्रह्मचर्य तथा ईश्वर प्रणिधान आदि की उपयोगिता को समझ सकते हैं। वे समानता, सामाजिक न्याय, वातावरण का संरक्षण, अन्तर्राष्ट्रीय तथा मानवीय भाईचारे जैसे आधुनिक मूल्यों की अच्छी तरह जाँच कर उनका अनुसरण कर सकते हैं।

छात्रों को स्वयं के लिए सत्य का पता लगाने के लिए उत्साहित करना चाहिए। इसमें यह आवश्यकता है कि मस्तिष्क खुला हो तथा धार्मिक पूर्वाग्रह न हो। छात्रों को यह समझाया जाए कि योग का पथ किसी विशिष्ट आयु वर्ग के लिए ही सीमित नहीं है यह सम्पूर्ण जीवन के लिए है। सहयोग को ऊँचे मूल्यों के लिए रखकर स्थूल से सूक्ष्म क्षेत्र में नियमित रूप से बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाए।

आधुनिक युग में धर्म तथा विज्ञान के बीच एक प्रकार का विवाद उत्पन्न हो गया है। बाह्य दुनिया को समझने के लिए विज्ञान का अध्ययन किये हुए छात्रों को आंतरिक जीवन को समझने के लिए धर्म का अनुसरण करने की कोशिश करनी चाहिए। धर्म का अर्थ है वह साधन जिससे मनुष्य का इहलोक के साथ परलोक भी सुधर जाए। उन्हें धर्मो को जोड़ने की प्रवृति रखनी चाहिए। भौतिक तथा मानसिक स्तर पर तथा इससे आगे भी योग का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए योग का अनवरत अभ्यास करना चाहिए। योग के आधारभूत सिद्धान्तों का यदि सही पालन किया जाए तो सफलता उचित समय पर अवश्य मिलेगी। लक्ष्य तुरंत प्राप्त न हो तो धैर्य को खोना नहीं चाहिए तथा किसी भी प्रकार की निराशा से बचना चाहिए। यूं तो योग में सम्पूर्ण विश्व की रुचि है। इस सम्बन्ध में शोध अध्ययनों के परिणाम योग शिक्षा की मान्यता के प्रबल प्रमाण हैं। * * *

चित्त शुद्धि के उपाय

प्रेषक—**जनक कुलश्रेष्ठ,** ग्वालियर

सारी सृष्टि सत, रज और तम का ही परिणाम है। चित्त (महतत्व) इन तीनों गुणों का प्रथम सत्व प्रधान परिणाम है। इस कारण इसको चित्त सत्व भी कहते हैं। चित्त सत्व ज्ञान स्वभाव वाला है। जब यह चित्त रजोगुण युक्त होता है और अन्य दोनों गुण गौण होते हैं, जब दुख, चंचलता, चिन्ता, शोक, संसार के कार्यों में प्रवृत्ति, ज्ञान—अज्ञान, धर्म—अधर्म एवं राग—वैराग्य की मिश्रित प्रवृत्ति साधक में उदित होती है।

जब यह चित्त तमोगुण युक्त होता है और रजोगुण, सतोगुण गौण होते हैं, तब साधक की प्रवृत्ति निद्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, अज्ञान, अधर्म, राग आदि से युक्त होती है।

रजोगुण और तमोगुण से अभिभूत होने के कारण चित्त में मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष उपस्थित हो जाते हैं। ये दोष जन्म—जमान्तरों से पनपते चले आ रहे हैं। परमात्मा की प्राप्ति के लिए इन दोषों से अन्तःकरण का शुद्ध होना आवश्यक है।

मल दोष का अर्थ है— चोरी, डकैती, हत्या जैसे कुकर्मों के कारण हुए पाप का दोष। इस दोष का परिहार, योगासन, ध्यान और प्राणायाम से होता है। अथवा किसी पुण्य के उदय होने से किसी संत के उपदेश से हृदय परिवर्तन होने से इस दोष का परिहार होता है। जैसे बाल्मीकि, अंगुलिमान आदि।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हिं सः।।

अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी अनन्यभाव से परमात्मा का ध्यान, भजन अपनी निश्चयात्मक बुद्धि से करता है तो वह साधु ही है।

विक्षेप दोष का अर्थ है मन की चंचलता। रजोगुण की प्रधानता के कारण चित्त विक्षिप्त रहता है। इस दोष के परिहार के लिये, रामायण, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए तथा सत्पुरुषों की संगति करना चाहिए। सात्विक आहार करना होता है।

आवरण दोष अज्ञानता के कारण होता है। इसका परिहार गुरु—निष्ठा, गुरु—भक्ति और सेवा तथा उनकी आज्ञा पालन से होता है।

भोजन :

चित्त के ऊपर भोजन का अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसा अन्न वैसा मन। हमारे शरीर में जितनी शक्तियां कार्य कर रहीं हैं। वे समस्त शक्तियां आहार से ही प्रभावित होती हैं। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं—''हाथी सबसे बड़ा पशु है; किन्तु वह शाकाहारी है। इस कारण वह शांतिप्रिय पशु है। इसके विपरीत शेर मांसाहारी पशु है। यही कारण है कि वह अधिक चंचल और भयानक पशु है।

भोजन बिल्कुल सादा, सात्विक, हल्का और पुष्टिकारक होना चाहिए। दाल, रोटी, घी, दूध, चीनी आदि सात्विक आहार करना चाहिए।

भोजन स्वउपार्जित एवं न्यायोचित उपलब्ध किए हुए पदार्थों का होना चाहिए। भोजन स्वउपार्जित और नेक कमाई का तो है, परन्तु बनाने वाली देवी का मन खिन्न है अथवा वह उद्विग्न मन से बनाती है तो उस भोजन से मन में अशान्ति होती है। अथवा वह देवी मासिक धर्म में आ गई है और उसकी दृष्टि भोजन पर पड़ गयी है, तो वह भोजन भी निषिद्ध है।

भोजन बनाने के पूर्व भोजन बनाने के बर्तन शुद्ध होना चाहिए। भोजनालय भी शुद्ध रखना चाहिए। भोजन में तामसिक पदार्थों जैसे मांस, मछली, अण्डा, लहसुन, प्याज आदि का सेवन पूर्णतः वर्जित है। बासी भोजन भी नहीं करना चाहिए। भोजन बनने के बाद तीन घण्टों के भीतर ही खा लेना चाहिए। फ्रीज में रखा भोजन बासी हो जाता है,

चोरी, डकैती, हत्या, बेईमानी अथवा अन्याय से उपार्जित किए हुए भ.जन के मूल में ही अशुद्ध भावना होती है। इसलिए उस भोजन के सेवन से चित्त अशुद्ध हो जाता है और अशान्त भी रहता है।

जिस प्रकार बिष्ठ आदि गंदी वस्तु को देखकर चित्त खिन्न हो जाता है, उसी प्रकार अशांत व्यक्ति, शूद्र, चाण्डाल, दुष्कृत्य करने वाले दुष्ट को देखकर भी चित्त क्षुभित हो जाता है।

चील, कौआ, गीध जैसे गंदगी खाने वाले जीवों को देखकर भी चित्त पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस बात की विशेष सावधानी रखी जाय कि खाद्य वस्तुओं को ये जीव स्पर्श न कर पावें। यद्यपि स्थितप्रज्ञ पूर्ण ज्ञानी के लिए कुत्ता, कौवा, चाण्डाल आदि सभी ब्रह्म स्वरूप हैं। परन्तु एक साधारण योग की सीढ़ी वाले साधक के लिए ये बातें विचारणीय हैं।

व्यवहार :

संत विनोबा भावे का कथन है कि चित्त शुद्धि के लिए साधक का व्यवहार भी शुद्ध होना चाहिए। मन को बाहरी चिंतन से मुक्त रखना चाहिए। कुसंग से सदा बचना चाहिए। सांसारिक झंझटों से जितना दूर रहा जायगा, उतना ही मन शुद्ध होगा। बाह्य वस्तुओं के चिंतन की अपेक्षा ईश्वर चिन्तन सदा करते रहना चाहिए। ईश्वर की विचित्र सृष्टि का अवलोकन करके उसके अनूठे कार्यों का चिंतन करते रहते से चित्त शुद्ध होता है।

आत्म परीक्षण :

चित्त शुद्धि के लिए सदैव आत्म परीक्षण करते रहना चाहिए। अपने द्वारा किए गए दिन भर के कार्यों के गुण–दोषों का परीक्षण सोने से पूर्व करते रहना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास करते रहने से साधक चित्तवृत्ति दोष से मुक्त हो जाता है।

परिसीमित जीवन :

चित्त शुद्धि के लिए जीवन परिसीमित होना चाहिए।

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

समस्त कार्य परिसीमित होना चाहिए। आहार भी नपा–तुला होना चाहिए। पेट का दो भाग भोजन से तथा एक भाग पानी से भरना चाहिए। और शेष चौथा भाग हवा के लिए छोड़ देना चाहिए। विहार अर्थात् घूमना या परिश्रम के कार्य भी उतने ही करना चाहिए, जितनी शरीर में सामर्थ्य हो। काम–धन्धे भी परिसीमित होना चाहिए। अधिक व्यस्तता के कारण शरीर में थकावट आ जाती है और चित्त अशान्त रहता है। न अधिक सोना और न अधिक जगना ही चाहिए। युवा पुरुष को कम से कम छः घण्टे नींद लेना चाहिए। अधिक जागने से भी मस्तिष्क में गर्मी बढ़ जाती है और चित्त अशान्त रहता है। छः घण्टों से अधिक सोने से शरीर में शिथिलता आ जाती है, आलस्य बना रहता है। अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। आँख, कान, जिह्वा आदि की चेष्टाएं परिसीमित होना चाहिए।

साधना :

साधना किसी पवित्र स्थान, नदी के तट, या तीर्थ स्थान पर करना चाहिए। यदि इतना करना असम्भव हो तो साधना के लिए अपने निवास गृह में ही एक पृथक पूजा–पाठ का कक्ष होना चाहिए। उस कक्ष में अपने से भिन्न विचार वाले व्यक्ति को प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि वह अपने अशुद्ध परमाणु वहां छोड़ेगा और मन क्षुबित होगा। समान विचार वालों के सम्पर्क में रहकर भगवत चर्चा सदैव करते रहने से चित्त शुद्ध रहता है।

चित्त के अन्दर राग–द्वेष, दूसरों में दोष दृष्टि रखना, क्रोध आदि दुर्गुण होते हैं। इन दुर्गुणों को दूर करने के लिए योग दर्शन में कहा है–

मैत्री करूणामुदितोपेक्षायां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।

अर्थात् सुखी व्यक्तियों को देखकर उनसे मित्रता करने की भावना से चित्त से राग–द्वेष की निवृति हो जाती है।

दुखी मनुष्यों पर करूणा की भावना रखने से घृणा करने का भाव चित्त से हट जाता है।

पुण्यात्मा पुरुषों के प्रति हर्ष की भावना करने से दोष दृष्टि या छिद्रान्वेषण की कुभावना चित्त से निकल जाती है।

पापी मनुष्यों के प्रति उदासीनता धारण करने से चित्त निर्मल हो जाता है। इस प्रकार से समस्त उपाय चित्त शुद्धि के हैं। चित्त शुद्ध हो जाने पर चित्त में एकाग्रता उदित हो जाती है।

* * *

महाप्रभुजी द्वारा बालिका पर अहैतुकी कृपा

प्रेषक—**वेदव्रत द्विवेदी** (उमापुर)

आनन्दकन्द, परम् करुणा निधान सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर, त्रिलोक जगत पावन, महाप्रभु श्री रामलाल जी दादा गुरुदेव जी महाराज अपने प्रिय शिष्यों पर एवं संस्कारित बच्चों पर किस प्रकार अद्भुत कृपा करते रहते हैं— यही मुख्य रूप से इस लेख का विषय है।

घटना से सम्बन्धित बालिका श्रद्धा नामक लड़की है तथा कक्षा आठवीं की छात्रा हैं। महाप्रभुजी की अनवरत कृपा इस बच्ची पर पड़ती रहती है। वह भी बड़े ही गंभीर भाव से आरती पूजन व आराध्यदेव जी के चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन करती रहती है।

घटना १८ नवम्बर २००४ की है। उक्त बालिका फोड़े—फुंसी हो जाने के कारण काफी त्रस्त थी। भारी दर्द होने के बावजूद वह स्कूल जाती और प्रभु जी आरती में नियमित रूप से सम्मिलित होती। घटना वाले दिल असहाय दर्द के साथ—साथ काफी तीव्र ज्वर भी हो गया और इस कारण स्कूल से आने के बाद बिस्तर से न उठ सकी। और न ही प्रभु जी के नियमित आराधना कार्यक्रम में सम्मिलित हो सकी। पीड़ा के कारण वह निरंतर कराह रही थी।

नियत समय सायं ७ बजे आरती प्रारम्भ हुई इसके पश्चात् प्रसाद वितरण चल ही रहा था कि उक्त बालिका पूजा—स्थल पर रोते हुए पहुँची। पिताश्री के कारण पूछने पर श्रद्धा ने बताया कि अभी स्वप्न में महाप्रभुजी ने उसे दर्शन दिया है। वे बाघाम्बर लपेटे हुए थे और उनके बाल घुटनों तक लम्बे थे। हाथों में लाल डमरू युक्त त्रिशूल धारण किये हुए है और वे क्रोध में दिख रहे थे। उनके शरीर से तेज दृष्टिगोचर हो रही थी।

श्रद्धा ने बताया कि महाप्रभु जी को मैंने प्रणाम किया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहाकि तुम यहाँ क्यों बैठी हो? दरबार में जाओ। अच्छा लल्ली बताओ तुम्हें मुझसे क्या पूँछना है? मेरे कुछ न पूंछने पर वे अन्तर्ध्यान हो गये। इसके बाद ही श्रद्धा ने दरबार में रोते हुए प्रवेश किया था और प्रभु जी के स्वरूप के सम्मुख दण्डवत् प्रणाम किया। जिसके तुरन्त बाद उस बच्ची की समस्त पीड़ा समाप्त हो गयी। फोड़े—फुंसी अनायास ही गायब हो गये।

इसके बाद श्रद्धा ने प्रेमपूर्वक रात्रि—भोजन किया और दो—ढाई घण्टे पढ़ाई भी की। रात्रि में पुनः स्वप्न में उसने गणेश जी के साथ पूजा अर्चना की। हाथियों के झुण्ड उनके चारों ओर था।

उन अकारण दयालु सिद्धेश्वर महाप्रभु जी के कृपा लीलाओं का अन्त कहाँ? उनकी कृपाओं का प्रवाह अनवरत अबाध गति से चल रहा है। तथा सभी पर विशेष कृपा की दृष्टि बरस रही है।(गुरुदेव) भगवान श्री कृष्ण भगवान के ही रूप में अवतरित होकर इस घोर कलिकाल में सभी बच्चों पर सस्नेह आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं।

गुरु बिन ज्ञान न उपजे, गुरु बिन मिटे न भेद।
गुरु बिन संशय न मिटे, जय जय जय श्री सद्गुरुदेव।।

❊ ❊ ❊

आय-व्यय का विवरण वर्ष-37

आय		व्यय	
(अ) ग्राहक शुल्क		(1) प्रिंटिंग प्रेस छपाई व कागज	94586-00
(अ) वार्षिक शुल्क	107665-00	(2) डाक टिकिट आदि	6500-00
(ब) आजीवन शुल्क	4800-00	(3) स्टेशनरी कार्यालय खर्च आदि	500-00
(ब) **सहयोगी राशि**		(4) वर्ष–38 विशेषांक के लिए अग्रिम राशि	13000-00
(1) दयानाथ द्विवेदी	1100-00		
(2) हरिशंकर त्रिपाठी	1877-00		
(3) डा० राजीव	500-00		
(4) कृष्ण गुप्ता	2100-00		
(5) एम० के वत्स	1001-00		
(6) रजनीश	1100-00		
(7) रुद्रदत्त चतुर्वेदी	5000-00		
	125143-00		114586-00
बैंक शेष (पिछला)	12575-00	बैंक शेष (नया जमा)	23132-00
	137718-00		137718-00

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______

श्रुति का मंगलकारी संदेश

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।।

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदय से एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक-दूसरे को प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझ को खींच ले चलो। परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त जनों से सदा मिले हुए रहो।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा